# किसानों के साथ छल कब तक

PEACE LIBRARY
Acc.-No.:..............
Date:..................
NEW DELHI

डॉ. परमानन्द सिंह यादव

सीमित वितरण हेतु

जनहित में

पॉपुलर एजूकेशन एण्ड एक्शन सेंटर (पीस)

ए–124/6, कटवारिया सराय, नई दिल्ली–110016

द्वारा प्रकाशित

अगस्त, 2013

मुद्रकः

डिजाइंस एण्ड डाइमेंशन

एलःए, फेस–2, नई दिल्ली–110017

# अनुक्रम


| | |
|---|---|
| जमीन किसान की, फायदा किसे ? | 1 |
| किसानों की बदहाली का जिम्मेदार कौन ? | 7 |
| किसान खुशहाल कब होगा | 15 |
| एफडीआई के औचित्य पर सवाल | 23 |
| किसान आत्महत्या बनाम कारपोरेट परस्त नीतियाँ | 29 |
| कुपोषण, भुखमरी और जमीन अधिग्रहण पर मीडिया मौन क्यों? | 34 |
| किसानों के हक की अनदेखी कब तक करेगी सरकार | 37 |
| खाद्य सुरक्षा और किसान | 44 |
| भूमि अधिग्रहण के विरूद्ध संघर्षों को कुचलना देश हित में नहीं है | 50 |

# जमीन किसान की, फायदा किसे?

भारतीय किसानों की समस्याएँ गुलामी का दौर रहा हो अथवा स्वतंत्रता के बाद सुलझने के बजाय उलझती ही गयी। हर इलाकों के किसानों द्वारा धरना देना, प्रदर्शन करना या आन्दोलन खड़ा करना साबित करता है कि भले ही अलग–अलग इलाकों की समस्याओं में थोड़ी–थोड़ी विभिन्नता हो, परन्तु जमीनी हकीकत पर यदि आकलन किया जाए तो इनकी समस्याओं को मुख्यतः तीन भागों में बाँटकर आसानी से समझाया जा सकता है।

1. जमीन अधिग्रहण की समस्या और उससे उत्पन्न खतरे
2. खेती की लागत को स्थिर या कम करने की समस्या
3. कृषि–उत्पादों के भाव लागत मूल्य के बढ़ने पर उसी के अनुपात में न बढ़ाने की समस्या।

फिलहाल दूसरी व तीसरी समस्या पर चर्चा न करके पहली समस्या अर्थात "जमीन अधिग्रहण की समस्या और उससे उत्पन्न खतरों" के बारे में सरकार और देश के संवेदनशील नागरिकों को बताना और समुचित उपाय करने हेतु सार्थक कदम उठाकर निजात पाने हेतु प्रयास करना ही मुख्य उद्देश्य है।

कैसे बनता भारत महान? कौन बनाता भारत महान? इसका सही उत्तर होगा– कारीगर, मजदूर और किसान। प्राचीन काल से ही अगर भारत की समृद्धि का अवलोकन किया जाए तो किसानों के बलिदान और योगदान को नकारा नहीं जा सकता है। उन्हीं के योगदानों का परिणाम था भारत सोने की चिड़िया। प्रसिद्ध इतिहासकारों डी.डी. कौशाम्बी, रामशरण शर्मा एवं इरफान हबीब ने अपने–अपने शोध पत्रों में यह बात कबूली है कि किसान स्वयं अपनी जमीन का मालिक होता था न कि राजा। राजा भी किसान की जमीन तब तक नहीं छीन सकता था जबतक किसान कर या लगान देता रहे। विभिन्न ऐतिहासिक साक्ष्य भी हमें बताते हैं कि मध्यकाल तक सेना तक को यह आदेश रहता था कि युद्ध के समय भी उनके द्वारा किसानों को परेशान न किया जाय और उनकी फसलों का भी नुकसान न हो। यहां पर गुलामी के दौर में किसानों की बदहाली को बताना भी अत्यन्त आवश्यक हैं चूकि अंग्रेज विदशी शासक थे अतः किसानों के उत्थान

व विकास की बात वे सोचते ही क्यों? वे तो किसानों का बिना कुछ विकास किए ही उनका शोषण लगान, कर या टैक्स के रूप में या तो स्वयं अपने सरकारी अहलकारों से या तो जमीदारों के द्वारा वसूलवाते थे। कृषि के उत्पादन बढ़ने या घटने से उनका कोई सरोकार नहीं रहता था। भले सारी फसल बाढ़ की चपेट में बर्बाद हो गयी हो या सूखे की भेंट बढ़ गयी हो। उन्हें तो निर्धारित भारी लगान व नजराना हर हालत में देना ही पड़ता था। किसान अंग्रेजों के द्वारा किये गये लूट के साथ ही साथ यहां के जमीदारों व अहलकारों की भी लूट के शिकार बनते रहे। लगान, नजराना आदि चुकता करने हेतु किसानों को महाजनों तथा सूदखोरों से बार–बार कर्जा लेना पड़ता था और वे उनके मकड़जाल में बुरी तरह से फसते चले जाते थे। अन्त में लगान न चुकता करने की दशा में जमीनों से भी उन्हें बेदखली का फरमान थमा दिया जाता था। और उसका खतरा हमेशा उनके सर पर मडराता रहता था। हालांकि ब्रिटिश सरकार द्वारा भी कृषि क्षेत्र के उत्पादन और किसानों की दशा जानने हेतु आयोग गठित किए जाते थे और आयोग के अधिकारी या सर्वेक्षकों द्वारा कृषि क्षेत्र में उत्पादन की कमी की रिपोर्ट भी दी जाती थी परन्तु तत्कालीन सरकार द्वारा इस पर ध्यान नहीं जाता था, ठीक आज की तरह। इतना ही नहीं कई एक निष्पक्ष व ईमानदार अधिकारी तत्कालीन सरकार द्वारा कृषि–क्षेत्र की उपेक्ष करना, अमीदारों, महाजनों, सूदखोरों एवं अहलकारों द्वारा किसानों को लूटना और शोषण करने की बात के साथ ही सरकारी नीतियों व कार्य प्रणालियों पर प्रश्न चिन्ह लगाते हुए रिपोर्ट दिए थे लेकिन उन पर अमल शायद ही कभी किया गया हो। अतः उसका भी अंजाम ठीक वैसे ही होता था जैसे कि आजादी के बाद अपनी सरकार द्वारा बनायी गयी आयोग की रिपोर्टों का होता है। इन रिपोर्टों में जमीदारों एवं महाजनों को हर तरह का संरक्षण देने की बातभी होती थी ठीक वैसे ही जैसा कि आज पूंजीपतियों व कारपोरेट घरानों को अरबों–खरबों रुपया लूट कर बटोरने के लिए सरकारी, संरक्षण में इसकी व्यवस्था की जाती है किसानों को उजाड़कर तथा बनजारा बनाकर, इसीलिए उस समय के किसानों राष्ट्रवादी नेताओं से मां की थी कि अंग्रेजों से आजादी के साथ हमें यहां के जमीदारों, सामंतों व पूंजीपतियों से भी आजादी चाहिए। परन्तु दुर्भाग्य कि ऐसा संभव नहीं हो सका। सरकारी संरक्षण में लूटने के लिए गोपाल कांडा का उदाहरण काफी है। गोपाल कान्डा जो हरियाणा सरकार के गृह

राज्यमंत्री थे, चालीस एकड़ जमीन किसानों से कौड़ियों के भाव खरीदे। सरकारी संरक्षण में उस जमीन का स्वरूप व नक्शा बदलवाकर रिहायसी दिखला दिया गया और आज कान्डा उससे अरबों की कमाई की तैयारी में लगे हुए हैं।

सरकार तो आज अपनी है। उसमें अपने लोग लगे हुए हैं। परन्तु किसानों के प्रति सरकारी रवैया साम्राज्यवादी कालीन से भी बर्बर हो गया है। अंग्रेज या जमीदार, जो केवल ज्यादा लगान या कर लेते थे परन्तु अपनी कहलाने वाली सरकार तो किसानों से उपजाऊ जमीन लेकर किसानी ही छीन लेती है। मजेदार बात यह है कि यह सब देश के विकास के नाम पर हो रहा है। बताया यह जा रहा है कि देश के विकास के लिए ऐसी कुर्बानी अतिआवश्यक है। किन्तु गौर से समझने पर यह सच्चाई सामने आएगी कि सारा खेल गरीबों व किसानों से संसाधन लेकर अमीरों को फायदा पहुंचाने तक का है। किसानों से जमीन लेकर कारखाने बनाए जाते हैं और बतलाया जाता है कि इससे देश का जी.डी. पी. बढ़ेगा और विकास होने पर लाभ सबको मिलेगा। लेकिन यह भ्रामक छलावा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। क्योंकि जिन किसानों के जमीन पर फैक्टरियां बनायी जाती हैं उसमें उन्हें मजदूर के रूप में नहीं रखा जाता है और इस तर्क के साथ कि वे कुशल कारीगर या मजदूर नहीं होते हैं बल्कि वे किसान हैं। औने–पौने दामों पर उनकी जमीन लेकर उन्हें और उनकी आने वाली अगली पीढ़ियों को आजीवन बेरोजगार बना दिया जाना किसानों के साथ छल करने के सिवाय और क्या है?

परतंत्र भारत में अंग्रेजों, जमीदारों, महाजनों आदि के जुल्म सितम झेलते हुए भी जब स्वतंत्रता मिली उस समय भारत के घरेलू उत्पादन में कृषि–उत्पादन का योगदान लगभग 80 प्रतिशत था। सरकार पहले के कुछ सालों की आर्थिक समीक्षा में बताती है कि राष्ट्र के कुल घरेलू उत्पादन में अब कृषि–उत्पादन का योगदान लगभग 22 प्रतिशत ही रह गया है। जो अब गिरकर 19 प्रतिशत पर आ गया है। निर्यात में इसका योगदान लगभग 15 प्रतिशत है। सरकार का यह तथ्य भी भ्रामक एवं गलत है। यह जानकर अत्यंत आश्चर्य होगा कि किसानों के इतने योगदान के बदले कृषि क्षेत्र के विकास के लिए मपत्र 1.2 प्रतिशत धन ही

मिलता है और उसकी गाढ़ी कमाई का बाकी हिस्सा किन गैर कृषि क्षेत्रों व उनसे सम्बन्धित मालिकों के विकास पर खर्च किया जाता है, सरकार इस तथ्य को उजागर भी नहीं करती है। अर्थात तथ्य को छिपाती है। क्या यह सरकार की फितरत बाजी नहीं है?

ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाली आम जनता को एक तथ्यपरक जानकारी देना अति आवश्यक है। केन्द्र सरकार आजादी मिलने के बाद 1950 से राष्ट्र के विकास के नाम पर पंचवर्षीय व अन्य कई योजनाएं बनाती रही है और इन योजनाओं पर केन्द्र व प्रदेश की सरकारें कितना धन खर्च करेंगी, इसका भी निर्धारण उन्हीं के द्वारा किया जाता है। महत्वपूर्ण बात यह है कि इन योजनाओं के लिए यदि जमीन की आवश्यकता है तो वह किसानों व आदिवासियों से ही लिया जाता रहा है। वह भी उनके विस्थापन आदि की पूरी व्यवस्था बगैर किए ही। उदाहरण स्वरूप डेम या थर्मल पावर स्टेशन बनाकर जो किसानों से अधिग्रहीत की गयी जमीन पर ही बनते हैं, बिजली पैदा की जाती है। बताया जाता है कि बिजली देश के विकास के लिए बहुत ही आवश्यक है, किन्तु थर्मल पावर स्टेशन या डेम से पैदा की गई बिजली का कितना हिस्सा किसानों को मिलता है इसकी सच्चाई विभिन्न क्षेत्रों में कितनी–कितनी बिजली सप्लाई की जाती है निम्न तालिका से पूरी तरह से स्पष्ट हो जाएगा–

**बिजली सप्लाई का हिस्सा प्रतिशत में**

| वर्ष | कृषि क्षेत्र | उद्योग व वाणिज्य | घरेलू | अन्य |
|---|---|---|---|---|
| 1955 | 31 | 44.0 | 18.7 | – |
| 2000 | 29 | 41.0 | 22.0 | – |
| 2004–05 (सूखे के साथ) | 23 | 43.7 | 24.0 | – |
| 2007 | 22 | 46.0 | 24.0 | – |

अर्थात कृषि क्षेत्र को सप्लाई की जाने वाली बिजली का हिस्सा प्रतिवर्ष घटता जा रहा है। ठीक इसके विपरीत उद्योग व वाणिज्य क्षेत्र में बिजली सप्लाई का हिस्सा

बढ़ता ही जा रहा है। क्या यह तथ्य इस सत्य को उजागर करने हेतु काफी नहीं है कि किसानों को किसानी से निर्वासित करके उनकी भलाई नहीं करना है बल्कि पूंजीपतियों और फैक्टरियों के मालिकों को मालामाल करना है। और सरकार का यही अब मुख्य उद्देश्य बन गया है। आखिर कबतक विभिन्न सरकारों द्वारा ऐसी शातिराना चालों के माध्यम से किसानों को उजाड़ा जाता रहेगा। ऐसे ही आर्थिक लेखा–जोखा रिपोर्ट के आधार पर यह कहना भी अनुचित नहीं होगा कि कृषि क्षेत्र पर कम धन धर्च किया जाता है जबकि अन्य क्षेत्रों जैसे– दूरसंचार, परिवहन, बिजली, कम्प्यूटर आदि पर अधिक और इन अन्य क्षेत्रों पर प्रतिवर्ष सरकारी धन खर्च करने का सिलसिला लगातार बढ़ता ही जा रहा है, वह भी किसानों की कुर्बानी दे करके।

पिछले कई वर्षों के आर्थिक हालात पर नजर डालने पर यह तो स्वीकारना ही होगा कि भारत की आर्थिक हालात पर नजर डालने पर यह तो स्वीकारना ही होगा कि भारत की आर्थिक व्यवस्था भी महंगाई व मुद्रास्फीति बढ़ने से बेपटरी होती जा रही है। उस हालात से उबरने के लिए केन्द्र व प्रदेश की सरकारों को परिवहन–क्षेत्र विशेषकर सड़कों के निर्माण से बढ़िया रास्ता कोई और नहीं दिखलायी दे रहा हैं उनका तर्क है कि सड़कों के बन जाने से राष्ट्र का विकास तेजी से होगा और डावाँडोल आर्थिक व्यवस्था को काबू में किया जा सकेगा, किन्तु यह भी सिवाय एक छलावा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। सड़क बनाने के लिए जमीन किसकी अधिग्रहीत की जायेगी? उत्तर स्पष्ट है, किसानों की। सड़कों को बनवाने के साथ उसके दोनों तरफ विकास क्षेत्र, शैक्षणिक व तकनीकी संस्थान, इमारतें आदि बनाये जायेंगे। इनके बनाने में सीमेन्ट, सरिया व अन्य सामग्रियों का उपयोग किया जाएगा। उपयोग की जाने वाली सारी वस्तुएं कारपोरेट घरानों के बड़ी–बड़ी फैक्टरियों में ही तैयार होते हैं। अतः इनके प्रयोग से फायदा फैक्टरियों के मालिकों को होगा न कि किसानों को। बड़ी–बड़ी ऊँची बनाई गई सड़कों पर पैदल, कारें, ट्रेक्टर, पशु, आदमी आदि को चलने की सख्त मनाही होगी। ऐसी दशा में इन सड़कों का उपयोग सिर्फ बड़ी–बड़ी फैक्टरियों में तैयार किए गये मालों व सामानों को कम समय में एक स्थान से दूसरे स्थान तक सरलता पूर्वक बिना किसी कठिनाई के पहुंचाना ही मुख्य उद्देश्य है जिससे कि उन सामानों का उपयोग अधिकाधिक हो सके और उन्हें अधिक से अधिक फायदा हो।

गंगा एक्सप्रेस–वे इसकी एक मिसाल है। यह सड़क पब्लिक–पार्टनरशिप की भी मिसाल है, क्योंकि जे. पी. एसोसिएट इसको बनवाने में लगभग तीस हजार करोड़ रुपया खर्च करेगा और उत्तर प्रदेश सरकार को सिर्फ जे.पी. ग्रुप को जमीन ही उपलब्ध करानी होगी। चूंकि प्रदेश सरकार एक भी पैसा नहीं लगाएगी, इसलिए जे. पी. समूह 35 वर्षों तक टोल टैक्स तो वसूलेगा ही, निर्मित इमारतों, संस्थानों आदि की बिक्री करके अरबों–खरबों की कमाई भी करेगा। बलिया से नोएडा तक लगभग 1050 किलोमीटर लम्बी आठ लेन की यह सड़क होगी। जमीनी सतह से इसकी ऊँचाई 5 से 7 मीटर तथा चौड़ाई 300 मीटर की होगी। सड़क इमारतें व संस्थानों को बनाने के लिए लगभग 95000 एकड़ लमीन की आवश्यकता पड़ेगी। इस एक्सप्रेस वे के लिए मात्र 10 प्रतिशत सरकारी जमीन उपलब्ध है अर्थात 90 प्रतिशत जमीन यादि लगभग 85500 एकड़ जमीन ली जायेगी, कौड़ियों के भाव मूल्य देकर किसानों से। जिन इलाकों के किसानों से जमीन ली जायेगी वह जमीन अत्यन्त ही उपजाऊ जमीन है और प्रतिवर्ष गेहूँ, गन्ना, आलू, पिपरमिन्ट व तम्बाकू की खेती करके हजारों से लाखों रुपये की कमाई किसान कर लेते हैं तथा अपने परिवार की सारी जिम्मेदारियों को पूरा इसी की कमाई से करते हैं। जमीन छिन जाने के बाद जो भी धन उसके बदले उन्हें मिलेगा वह कुछ दिनों में ही खर्च हो जायेगा और वे व उनकी अगली पीढ़ी बेरोजगार होकर दरिद्र का जीवन जीने के लिए मजबूर हो जायेगा। दूसरी तरफ जे.पी. एसोसिएट व अन्य कारपोरेट घराने मालामाल होंगे। राष्ट्र के विकास के नाम पर कुर्बानी तो दिया किसान पर विकास उसका न होकर हुआ किसी और का अर्थात पूंजीपतियों का। इसी प्रकार से अन्य सड़कें तथा अनेकों परियोजनाएं किसानों की जमीन राष्ट्र के विकास के नाम पर लेकर बनाई तो जाती हैं किन्तु इन परियोजनाओं से कुछ लोगों का ही भला और विकास होता है। भारत गांवों का देश है। किसानों का देश है। यहां 65 प्रतिशत से 70 प्रतिशत जनसंख्या किसानी करती है। उसके लिए विकास की अवधारणा शोषण की अन्तहीन कथा विकास के नाम पर छलावा है। अगर वास्तव में सरकार भारत के किसान व आमजन के विकास के लिए कटिबद्ध है तो सभी सरकारी व गैर–सरकारी योजनाओं का केन्द्र बिन्दु सरकार हो। समय रहते सोचना जरूरी है। नहीं तो राष्ट्र की सारी विकास योजनाएं किसानों को कंगाल बनाने के बाद अन्ततः पूरे देश को भी कंगाल बना देगी।

# किसानों की बदहाली का जिम्मेदार कौन ?

आजकल देश में आरोपों–प्रत्यारोपों का दौर चल रहा है। प्रतिदिन कुछ न कुछ नये घपले–घोटाले आम जनता के सामने आ रहे हैं। आरोपों से बचाने के लिए आरोपित व्यक्ति के पक्ष में तथाकथित बुद्धजीवी वर्ग के साथ राजनेता, मंत्री आदि आधारहीन और बेबुनियाद दलील के साथ खड़े हो जाते हैं। कारपोरेटों की वकालत करते समय यह तथाकथित बुद्धिजीवी देश के 70 प्रतिशत किसानों के अन्न उपजाने की लागत–मूल्य के बारे में न तो कभी सोचते होंगे और न कभी इस बारे में उन्हें ख्याल आता होगा। ऐसे ही बुद्धिजीवी–वर्ग अपनी सोच, विचार व वक्तव्यों से किसानों का अहित करने में ही अपनी बुद्धिमानी समझते हैं। इन लोगों से गुजारिश है कि रिलायंस कम्पनी या अन्य औद्योगिक कम्पनियों के लागत के गुणा–गणित के बजाय किसानों की किसानी के लागत के गुणा–गणित को समझने में माथा–पच्ची करें, तब इन्हें पता चलेगा कि जिन क़ारपोरेट–घरानों की ये वकालत करते हैं उनके ही लाभदर में प्रतिवर्ष बढ़ोत्तरी से किसान बदहाल हैं। किसानों के श्रम तथा खेती में भारी–भरक़म लागत लगाने के बाद पैदा किये गए खाद्यानी व गैर–खाद्यानी फसलों की कीमतें उनके श्रम और लागत को नजर अन्दाज करते हुए सरकार निर्धारित करती है, जिससे किसान भुखमरी, लाचारी, गरीबी में मर–मर कर जीते हैं। क्या इस बात को ऐसे बुद्धिजीवी नहीं जानते? जानते तो हैं परन्तु ऐसे बुद्धजीवियों को रिलायंस की ही नहीं बल्कि सारे कारपोरेट घरानों के नफा–नुकसान के बारें ज्यादा जानकारी रहती है। तभी तो उन्हें गैस का मूल्य सरकार द्वारा निर्धारित करना अटपटा लगता है और फसलों के मूल्य निर्धारण पर ये मौन साध लेते हैं। यह बात दावे के साथ कही जा सकती है कि देश की बहुतायत जनसंख्या के नफा–नुकसान के बारे में सोचने का या तो उनके पास समय नहीं है या जानबूझकर अनजान बने हुए हैं। यह बेहद दुखदायी और चिन्तनीय बात है। नीचे दिए गये तथ्यों से अपने आप साबित हो जाएगा कि सरकार चाहे जो भी हो वह हमेशा कारपोरेट घरानों के फायदे के बारे सोचती है और उन्हें येन–केन प्रकारेण फायदा पहुँचाने के जुगाड़ में लगी रहती है।

**पहला तथ्य** :– जब अमरीका मंदी के गम्भीर दौर से गुजर रहा था तब भारतीय सरकार ने अक्टूबर 2008 तक बैंको, दीगर वित्तीय व गैर–वित्तीय निगमों को लगभग एक लाख तीस हजार करोड़ रूपये की रिआयतें दे डाली थी और यदि अक्टूबर 2008 से अगस्त 2009 तक के 6 लाख करोड़ की रिआयतों को शामिल कर लिया जाए तो सरकारी रिआयतों का लेखा–जोखा सात लाख तीस हजार करोड़ हो जाएगा।

**दूसरा तथ्य** :– सितम्बर 2008 के अखबारों में 32 ऐसी बड़ी–बड़ी भारतीय कम्पनियों के नाम बताये गए थे जिनमें अमरीकी बैंक 'लेहमैन' और 'मेरी लिंच' इत्यादि की हिस्सेदारियाँ लगी हुई है। अमरीकी बीमा कम्पनी 'ए.आई.जी.' के भारतीय शाखा में टाटा साहब की हिस्सेदारी है। इस प्रकार यह कहना गलत नहीं होगा कि अधिकतर या लगभग सभी विदेशी कम्पनियों में भारतीय पूँजीपतियों या भारतीय कारपोरेट घरानों की हिस्सेदारी है। सरकार द्वारा छूट व रिआयतें देने का फायदा सिर्फ भारतीय कारपोरेट को ही नहीं हुआ बल्कि अमरीका की संकटग्रस्त कम्पनियों के भारतीय शाखाओं को भी हुआ है।

**तीसरा तथ्य** :– मंदी व धीमी गति के शिकार हो गये कारपोरेट सेक्टर के आर्थिक क्षेत्रों को गतिशील करने हेतु सात लाख तीस हजार करोड़ रूपयों की रिआयतों के अलावा इन कम्पनियों के मूलधन और सूद को भी माफ कर दिया गया किसानों व आम–जनता के दुख–दर्द की कीमत पर।

**चौथा तथ्य** :– 2001 से 2008 तक किसानों की भलाई के नाम पर रासायनिक खादों का मूल्य नहीं बढ़ाया गया। किन्तु सरकार खादों के मूल्य पर खरबों रूपये की सब्सिडी प्रतिवर्ष देती रहती है जिससे सरकार को खादों पर दिए गए सब्सिड़ी के बराबर घाटा उठाना पड़ता है। जैसे 2003 में 12 हजार करोड़ रूपये, 2007 में 40 हजार करोड़ रूपये और 2009 में 99 हजार करोड़ रूपये की दी गई सब्सिडी सबूत के तौर पर लिया जा सकता है। सच्चाई तो यह है कि किसानों की भलाई के नाम पर खादों इत्यादि में दी गई सब्सिडी का फायदा 80 प्रतिशत या 90 प्रतिशत भारतीय किसानों को न मिलकर मिलता तो है औद्योगिक व कारपोरेट वर्ग को ही। यदि सब्सिडी न दिया जाये तो महंगी होती खादों को किसान खरीदने में असमर्थ हो जाएगा। ऐसे हालात में औद्योगिक घरानों के खादों का व्यापार चरमराने लगेगा। फलस्वरूप इन वर्गों को घाटा होने लगेगा। इनके घाटे को बचाने के लिए ही सरकार खादों पर सब्सिडी देती है न कि किसानों की भलाई के लिए। यह कहना गलत नहीं होगा कि सब्सिडी चाहे खाद पर दी जाय या रसोई गैस पर मात्र कारपोरेट के हित को ध्यान में रखकर ही दी जाती है।

**पाचवाँ तथ्य** :– वित्तमंत्री के 6 जुलाई 2009 में दिए गए बयान के अनुसार एक सौ चार हजार करोड़ रूपये की टैक्स वसूलियाँ कम हुई थी जिसमें पूँजीवादी कम्पनियों पर लगे हुए टैक्सों के बकाये और सरचार्ज टैक्स की माफी मिलाकर 81 हजार करोड़ रूपये की रकम थी। पूँजीपतियों पर लगे हुए टैक्सों, करों को एकाएक

घटाना या माफ करने का सीधा असर बोझ के रूप में आम जनता के उपर पड़ता है। फिर भी सरकार इस कार्य को करने में थोड़ा भी संकोच नहीं करती है और इस माफी के पक्ष में झूठी दलील देती है कि राष्ट्र की आर्थिक वृद्धि व तकनीकी उन्नति के लिए पूंजीपतियों पर लगे टैक्स, कर एवं पिछले कर्जो के सूदों के बकाये की माफी जायज और आवश्यक है। जबकि इसके उलट गरीबों, किसानों व मजदूरों के हितों की दृष्टि से टैक्स, कर, चुंगियां या कर्जों के मूलधन व सूद की किश्तें माफ करने या घटाने की मांगों को सरकार विकास के राह का रोड़ा बताकर उसे माफ नहीं करती है; और जब कभी किसानों के कर्जे या कर्जों के सूद को हिलाहवाली करते हुए सरकार यदि नाम मात्र भी माफ करती है तो इस बारे में काफी हो–हल्ला भी करती है। वही पर कारपोरेट सेक्टर के किसी प्रकार के माफी का किसी को भी कानों–कान खबर नहीं लगता है। क्या यह सब कारपोरेट घरानों को फायदा पहुँचाने की सरकार की चालवाजियाँ नहीं तो और क्या है?

इस सन्दर्भ में सबूत के तौर पर एक और तथ्य देखें। निगम आय कर और उत्पाद तथा आयात शुल्क माफी के सरकारी आकड़ों से पता चलता है कि 2005–2006 से लेकर 2010–2011 तक के छः बजटों में सरकार को 3,74,937 करोड़ रूपये की धनराशि निगम आयकरों के रूप में वसूलना चाहिए था। किन्तु यह वही राशि है जिसे भारत सरकार कारपोरेट घरानों से वसूलने में असमर्थ रही है। इन आकड़ों से यह भी पता चलता है कि 2005–2006 से 2010–2011 तक न वसूली जा सकी धनराशि लगातार बढती रही। सिर्फ 2010–2011 में कारपोरेट सेक्टर का आयकर के रूप में 88263 करोड़ रूपये माफ करके इतने रूपये का लाभ सरकार द्वारा उन्हें पहुंचाया गया अर्थात हमारी सरकार 2010–11 में प्रतिदिन 240 करोड़ रूपये आयकर के रूप में इन सेक्टरों से वसूल न करके माफ करती रही और उनके लाभदर को बढ़ाने में साथ देती रही।

## निगम आयकर और उत्पाद तथा आयात शुल्क माफी का सरकारी आकड़ा (करोड़ रूपये में)

| | कुल | 2005–06 | 2006–07 | 2007–08 | 2008–09 | 2009–10 | 2010–11 |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| निगम आयकर | 374937 | 34618 | 50075 | 62199 | 66901 | 72881 | 88263 |
| उत्पादक शुल्क | 749623 | 66760 | 99690 | 87468 | 128293 | 169121 | 198291 |
| आयात शुल्क | 1000463 | 127730 | 123682 | 153593 | 225752 | 195288 | 174418 |
| कुल योग | 2125023 | 229108 | 273447 | 303260 | 420946 | 437290 | 460972 |

स्रोत : आर्थिक समीक्षाएं

ये आकड़े इस सच्चाई को और मजबूत करते हैं कि विगत छः वर्षों में पूंजीपति वर्ग की आमदनी लगातार बढ़ती रही और इनके आय के अनुपात से बढ़े हुए कर की वसूली न करके सरकार उसे माफ करती रही, जबकि किसानों का 70000 करोड़

रूपये की कर्जमाफी कारपोरेट वर्ग को दी जाने वाली प्रतिवर्ष की कर माफी की तुलना में बहुत ही छोटी रकम है। फिर भी सरकार इसे माफ नहीं करती। क्या यह वर्णित तथ्य सरकार की कारपोरेटी–परस्ती को साबित नहीं करता।

इन सारे तथ्यों के अलावा अगला तथ्य देखें। रिलायंस इन्डस्ट्रीज लिमिटेड के मालिक अम्बानी को फायदा पहुँचाने में पूर्व–निर्धारित नीतियों को तोड़ा–मरोड़ा जा रहा है भले ही आम जनता मँहगाई के बोझ से दबकर कराहती ही क्यों न रहे। पहले भाजपानीत सरकार ने आरएलआई कम्पनी को फायदा पहुँचाने वाली शर्तों पर प्राकृतिक गैस का ठेका दिया। इस कम्पनी ने 14 अप्रैल 2006 को गैस का मूल्य निर्धारण सम्बन्धित एक फारमूला सरकार के पास अनुमोदन के लिए भेजा। उस समय रिलायंस से खरीदी जा रही गैस की कीमत 2.34 डालर प्रति यूनिट थी। मंत्रालय ने 26 जुलाई 2006 को कम्पनी को सूचित किया कि कम्पनी द्वारा अनुमोदन के लिए भेजा गया गैस–मूल्य–फॉर्मूला अनुमोदित नहीं किया जा सकता है। अतः कम्पनी को पूर्व निर्धारित दर पर ही गैस देनी पड़ेगी। इसके बाद कम्पनी ने 18 मई 2007 को पुनः एक और फॉर्मूला मंत्रालय के पास भेजा। इस फॉर्मूला के जाँच के लिए विभिन्न सचिवों की एक कमेटी बनायी गयी। इस कमेटी ने जाँच के बाद तय किया कि आरआइएल के फॉर्मूला को तभी अनुमोदित किया जा सकता है जबकि इसके लिए कोई ठोस नीति बना ली जाए। क्योंकि फरवरी 2007 के फॉर्मूला की तरह इस फॉर्मूले में भी कई कमियाँ थीं। इसके पश्चात् इओजीएम ने इओसी और सीओएस के 12 सितम्बर 2007 के मीटिंग के संस्तुति के आधार पर 23.10.2008 को गैस के मूल्य को 2.34 डालर से बढ़ाकर 4.2 डालर प्रति यूनिट अगले पाँच वर्षों के लिए कर दिया। साथ ही साथ इस योजना पर कम्पनी के खर्च की सीमा भी लगभग तीन गुना बढ़ा दी गई। जबकि ठेका देते समय गैस की कीमत 2.34 डालर प्रति यूनिट निर्धारित की गई थी। रिलायंस के अनुसार केजी–डी 6 वेसिन में गहरे पानी के अन्दर से गैस निकालने में नवीन व बेहतरीन तकनीकी संसाधनों का इस्तेमाल किया जा रहा है, इसलिए गैस निकालने की लागत काफी बढ़ गई है। अतः सितम्बर 2010 में पुनः दाम बढ़ाने के लिए कम्पनी द्वारा सरकार पर दबाव बनाया गया। हालाकि 23.10.2008 के निर्देशानुसार गैस के मूल्य का निर्धारण 2014 से पहले नहीं किया जा सकता है। इसी दबाव के कारण अन्ततः जयपाल रेड्डी से पेट्रोलियम मंत्रालय छीन लिया गया। क्या इस तथ्य को जानने के बाद इससे इन्कार किया जा सकता है कि औद्योगिक घरानों के मर्जी–मुताबिक ही सरकार चलती है?

अब यहाँ पर कृषि उत्पादों के लागत–मूल्य, सरकार द्वारा निर्धारित किए गए उनके समर्थन–मूल्य, खादों पर दी जाने वाली सब्सिडी आदि का विश्लेषण करके सरकार की चालाकी को आम–जनता के सामने उजागर करना अतिआवश्यक है।

इस विश्लेषण से पूरी तरह साफ हो जाएगा कि सरकार किसानों की हितैषी बनने का दिखावा भर करती है। असलियत तो यह है कि वह केवल कारपोरेट घरानों के नफा–नुकसान के बारे में ही हमेशा सोचती रहती है और नीतियों का निर्धारण भी उन्हीं के नफा–नुकसान को सामने रखकर इस प्रकार से करती है कि उनका लाभ ही नहीं बल्कि लाभदर प्रतिवर्ष बढ़ता जाए।

## गेहूँ व धान के लागत–मूल्य व उत्पादन–मूल्य का सरकारी लेखा–जोखा

### धान

| मद | आन्ध्र प्रदेश | | बिहार | | उत्तर प्रदेश | | पंजाब | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | 1981–82 | 1982–83 | 1981–82 | 1982–83 | 1981–82 | 1982–83 | 1981–82 | 1982–83 |
| 1. खेती की लागत (प्रति हेक्टेयर रू. में) | | | | | | | | |
| क. नकदी व गैर नकदी खर्चे | 2408.30 | 2775.46 | 949.56 | 1086.40 | 1442.62 | 1510.09 | 3477.67 | 3692.22 |
| ख. अन्य खर्चों समेत कुल लागत | 3844.92 | 4421.30 | 2392.47 | 2447.73 | 2744.12 | 2754.88 | 5473.89 | 5805.82 |
| 2.उत्पादन का मूल्य (प्रति हेक्टेयर रू. में) | | | | | | | | |
| क. मुख्य उत्पादन | 3937.86 | 4389.26 | 2066.94 | 2762.49 | 2705.38 | 2559.33 | 6580.32 | 7123.11 |
| ख. गौण उत्पादन | 387.09 | 440.93 | 385.40 | 412.78 | 335.20 | 294.50 | 25.17 | 29.95 |

### गेहूँ

| मद | हरियाणा | | बिहार | | उत्तर प्रदेश | | पंजाब | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | 1981–82 | 1982–83 | 1981–82 | 1982–83 | 1981–82 | 1982–83 | 1981–82 | 1982–83 |
| 1. खेती की लागत (प्रति हेक्टेयर रू. में) | | | | | | | | |
| क. नकदी व गैर नकदी खर्चे | 2004.18 | 2372.82 | 1331.10 | 1456.91 | 2177.49 | 2315.82 | 2390.94 | 2632.93 |
| ख. अन्य खर्चों समेत कुल लागत | 3525.36 | 3788.17 | 3225.34 | 3332.42 | 3572.75 | 3793.18 | 3776.19 | 4227.28 |
| 2.उत्पादन का मूल्य (प्रति हेक्टेयर रू. में) | | | | | | | | |
| क. मुख्य उत्पादन | 3598.96 | 3772.16 | 4492.62 | 4316.70 | 3157.63 | 3788.18 | 4774.07 | 463857 |
| ख. गौण उत्पादन | 544.19 | 844.96 | 6.25.78 | 661.92 | 642.81 | 838.19 | 514.19 | 454.45 |

स्रोत : 'किसानों की मांगे एवं समस्याएं' लेख–जी. डी. सिंह

गेहूँ व धान के लागत–मूल्य व उत्पादन–मूल्य के आकड़ों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पंजाब के किसानों को अन्य प्रान्तों के किसानों की तुलना में उत्पादन–मूल्य लागत–मूल्य से थोड़ा सा अधिक मिलता है। शायद इसी वजह से पंजाब के कृषकों की हालत और प्रान्त के किसानों से थोड़ी बहुत अच्छी रहती है। इसका यह मतलब नहीं है कि पंजाब के किसान सम्पन्न होते हैं। इस तालिका में दिए गए आकड़ों के तुलनात्मक अध्ययन से यह भी साफ हो जाता है कि खेती के लागत मूल्य से उत्पादन का मूल्य या तो लगभग बराबर है या लागत–मूल्य से कम है। 1983–84 से लगायत 2010–11 तक के आकड़ों के सर्वेक्षण का निष्कर्ष और भयावह व चिन्तनीय है। तालिका में दर्शाए गये लागत–मूल्य में यदि किसानों के श्रम को भी जोड़ दिया जाए तो किसानों के हाथ सिर्फ व सिर्फ घाटा ही आता है, क्योंकि साल–दर–साल खेती के लागत मूल्यों में बेतहासा वृद्धि होती जा रही है। इसके ठीक विपरीत कारपोरेटों और पूंजीपतियों को लागत–मूल्यों के वृद्धि से अधिकाधिक लाभ होता है। आप सोचेंगे जरूर कि कृषि के लागत–मूल्यों में वृद्धि से पूंजीपतियों को फायदा कैसे होगा?ट्रैक्टर, पम्पिंग सेटों व उनके सामानों, खाद, बीज, डीजल, कीटनाशक आदि इन्हीं के उत्पाद हैं और इन्हीं उत्पादों का खेती में उपयोग होता है। इन सामानों का मूल्य तेजी से हर साल बढ़ता जा रहा है। फलस्वरूप खेती का लागत–मूल्य हर साल बढ़ता जा रहा है जिसका सीधा फायदा पूंजीपतियों को ही मिलता है। इसीलिए किसानों के खेती में घाटे का दर और दूसरी तरफ पूंजीपतियों का लाभ दर साल–दर–साल बढ़ता जाता है। अतः अमीर और अमीर होता जा रहा है जबकि किसान बदहाल होकर कंगाल बनता जा रहा है।

सरकार किसानों के उत्पादों का मूल्य 'समर्थन मूल्य' के नाम पर कम से कम निर्धारण करके मध्यम वर्ग और वेतनभोगी कर्मचारियों के निगाह में अपने को उनका पक्षधर साबित करती है। सरकार द्वारा निर्धारित धान, गेहू, मोटा अनाज व दलहन के समर्थन मूल्य की तालिका स्वयं इस सच्चाई को उजागर करती है। किन्तु असली मसला यह नहीं है। असली मकसद तो यह है कि कृषि–उत्पादों के भाव को कम रखके उन औद्योगिक उत्पादनों की लागत कम रखना है जिसमें कृषि उत्पादों का प्रयोग कच्चे माल के रूप में किया जाता है। इसके साथ ही साथ इन उत्पादों की कीमत कम रहने से कम्पनियाँ औद्योगिक मजदूरों तथा शहरी निम्न–मध्यम–वर्गीय कर्मियों को कम वेतन देकर अपने मुनाफे के दर और बढ़ा लेती है।

**धान, गेहूँ, मोटे अनाज व दलहन का सरकारी निर्धारित समर्थन मूल्य (रू. प्रति कुन्तल में)**

| वर्ष | धान | गेहूँ | मोटा अनाज | चना | अरहर | मूँग | उरद |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1981–82 | 115 | 142 | 116 | .. | .. | .. | .. |
| 1982–83 | 122 | 151 | 118 | 235 | 215 | 240 | 230 |
| 1983–84 | 132 | 152 | 124 | 240 | 245 | 250 | 245 |
| 1991–92 | 230 | 280 | 205 | 500 | 545 | 545 | 545 |
| 1992–93 | 270 | 330 | 240 | 600 | 640 | 640 | 640 |
| 1993–94 | 310 | 350 | 260 | 640 | 700 | 700 | 700 |
| 2001–02 | 530 | 620 | 485 | 1200 | 1320 | 1320 | 1320 |
| 2002–03 | 530 | 620 | 485 | 1220 | 1320 | 1330 | 1330 |
| 2003–04 | 550 | 630 | 505 | 1400 | 1360 | 1370 | 1370 |
| 2009–10 | 950 | 1100 | 840 | 1760 | 2300 | 2760 | 2520 |
| 2010–11 | 1000 | 1170 | 880 | 2100 | 3000 | 3170 | 2900 |
| 2011–12 | 1080 | 1285 | 980 | 2800 | 3200 | 3500 | 3300 |
| 2012–13 | 1250 | .. | 1500 | 3200 | .. | .. | .. |

स्रोत : 1. कृषि मंत्रालय, भारत सरकार 2. सीएसीपी

नोट : समर्थन मूल्य में अलग–अलग वर्षों में जब तब दिया गया बोनस भी सम्मिलित है।

अनाजों का 'समर्थन मूल्य' वास्तव में सरकार उन्हीं गैर–किसानी औद्योगिक, व्यापारिक व वित्तीय वर्गों के निर्देशन में सलाह–मशवरा करके तय करती है जिनकी पूंजियाँ औद्योगिक, व्यापारिक, ग्रामीण व कृषि क्षेत्र में लगती हैं और जिनके कारखानों में तैयार किए गए सामान कृषि क्षेत्रों में साधन के रूप उपयोग किए जाते हैं। तथा जिन औद्योगिक क्षेत्रों में कृषि–उत्पादों का कच्चे माल के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। स्वाभाविक रूप से समर्थन मूल्य निर्धारित करते समय ये लोग अपने–अपने वर्गों के हित को ध्यान में रखकर कम से कम मूल्य निर्धारित करेंगे। सरकार समर्थन मूल्य निर्धारण करने वाली समितियों में किसानों की भी भागीदारी को अवश्य सुनिश्चित करें ताकि वे अपनी समस्याओं को बतला कर अनाजों का सही दाम निर्धारित करवा सकें। सरकार रासायनिक खादों पर सब्सिडी क्यों देती है?खाद पर सब्सिडी देना भी सरकार की एक पाखण्डी चाल है, क्योंकि पहले से ही कंगाल बना किसान खाद का वास्तविक मूल्य (बाजारी मूल्य) देकर खाद नहीं खरीद पाएगा। अतः कृषि–उत्पाद में गिरावट आएगी जिसके कारण किसानों की आमदनी कम होने लगेगी। और इसका दुश्प्रभाव कृषि उत्पादन में लगने वाले साधनों के कारखानों के मालिकों पर अवश्य पड़ेगा। कारण उनके उत्पादों की खरीददारी धराशायी हो जाएगी। निश्चय ही इससे उनका लाभ भी प्रभावित होगा।

सरकार द्वारा खाद पर सब्सिडी देने का मुख्य कारण है पूंजीपतियों के उत्पादों के बिक्री को हमेशा बनाए रखना ताकि उन्हें लगातार मुनाफा मिलता रहे।

सकल घरेलू उत्पादन में कृषि उत्पादों के योगदान की तालिका से स्पष्ट है कि सकल घरेलू उत्पादन में कृषि का योगदान 2006–07 से लेकर 2010–11 तक गिरता जा रहा है। इस गिरावट के पीछे सरकार की गलत नीतियाँ ही जिम्मेदार हैं, न कि किसान।

**सकल घरेलू उत्पादन में कृषि का योगदान (आधार वर्ष 2004–05 मूल्य)**

| वर्ष | 2006–07 | 2007–08 | 2008–09 | 2009–10 | 2010–11 |
|---|---|---|---|---|---|
| कृषि व कृषि सम्बन्धित अन्य स्रोतों के उत्पाद (रू करोड में) | 619190 | 655080 | 654118 | 656975 | 692499 |
| सकल घरेलू उत्पादन में कृषि का योगदान (प्रतिशत में) | 17.4 | 16.8 | 15.7 | 14.6 | 14.2 |

निचोड़ में अब यह कहना गलत नहीं होगा कि सरकार की नीतियाँ कारपोरेट–परस्त और किसान विरोधी होती हैं जिसके फलस्वरूप किसान दिन–प्रतिदिन बदहाल होता जा रहा है। अतः सरकार और सारे राजनैतिक दल मिलकर अपने निहित स्वार्थ से उपर उठकर ऐसी नीतियां बनाएं जिससे कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्र एक दूसरे के पूरक बनें ताकि इन दोनों क्षेत्रों में साम्य स्थापित हो सके और भारत विश्व का अग्रणी राष्ट्र बन सके।

# किसान खुशहाल कब होगा

सरकार, सांसद, विधायक, राजनैतिक दलों के नेतागण, प्रशासनिक अधिकारी, सरकारी तथा गैर सरकारी अधिकारी एवं कर्मचारी, कारपोरेट सेक्टर, एनजीओ, मजदूर व किसान सभी देश को विकास के रास्ते पर ले जाना चाहते हैं। परन्तु उनकी अलग–अलग भागीदारी कितनी है इसका भी खुलासा होना चाहिए। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह का यह कथन कि "पैसा पेड़ पर नहीं उगता है" यदि सच्चाई की कसौटी पर परखा जाए तो एकदम सही साबित होगा। वे अच्छी तरह जानते हैं कि मुद्रा कैसे पैदा की जाती है किन्तु उसे स्पष्ट नहीं करना चाहते। इसके पीछे उनकी मन्शा क्या है, वे ही जानते होंगे। वास्तविकता यह है कि मुद्रा (पैसा) किसी भी देश में पेड़ पर पैदा नहीं की जाती है, अगर की जाती है तो शारीरिक श्रम से नई जिन्स तैयार करके ही। अतः शारीरिक श्रम के नींव पर ही देश के विकास का सारा ताना–बाना खड़ा किया जाता है और इसके बिना देश को विकास के राह पर आगे ले जाना कल्पना से परे की बात है। यदि शारीरिक श्रम को मुख्य आधार मानकर लोगों के योगदान का मूल्यांकन किया जाए तो यह तथ्य सामने उभर कर आता है कि देश के विकास में मजदूर और किसान सबसे अधिक अहम् भूमिका निभाते हैं। कारण अपने शारीरिक श्रम से वही नई जिन्स को उत्पादित करते हैं। मजदूर समाज के हर वर्ग के लोगों को भौतिक सुख के सारे संसाधनों को अपने श्रम से बनाकर उपलब्ध कराता है और किसानों के कठिन श्रम के बदले देशवासियों को दो वक्त की रोटी मिलती है। इसीलिए यदि भगवान को जन्मदाता कहा जाता है तो किसान को अन्नदाता। किसान व मजदूर हमारे समाज की रीढ़ तो है परन्तु तिरस्कृत और दयनीय स्थिति में हैं। इन्हें समाज का हर तबका आज हिकारत भरी नजरों से देखता है। किसान तो अन्नदाता होते हुए भी भिखारी बन गया है। अब आँसू पीकर जीते रहना उसके भाग्य में लिखा है। किसानों की ऐसी दुर्दशा क्यों है? आखिरकार उनकी दुर्दशा के पीछे किनका हाथ है?कारणों को तलाशकर उनका निराकरण करना आज के समय की जरूरत है। भारत गाँवों का देश है। देश की सवा सौ करोड़ आबादी के लिए दो जून की रोटी जुटाने वाला 65–70 प्रतिशत किसान गावों में रहता है। गाँव देश की आत्मा है

फिर भी उपेक्षित है। किसान दो वक्त की रोटी और तन ढकने के लिए कपड़ों के मोहताज हैं। राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी द्वारा कृषि और उससे जुड़े क्षेत्रों के विकास को ग्रामीण भारत की सर्वांगीण प्रगति का मूल आधार बताना और ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर बढ़ाकर आर्थिक समृद्धि सुनिश्चित करवाने की बात कहना किसानों की दीनता को उजागर करता है। एक तरफ कृषि–क्षेत्र में नई–नई तकनीकी संसाधनों का प्रयोग करके उत्पादन तथा उत्पादकता बढ़ाने के बाद भी किसानों की दशा जस की तस है तो दूसरी तरफ अमरीका और यूरोप जैसे देशों में अत्याधुनिक तकनीकी संसाधनों का उपयोग कृषि क्षेत्र में करने के बाद भी वहाँ की किसानी सब्सिड़ी के बल पर ही जीवित है। दरअसल में ये दोनों देश किसानों को सब्सिडी के रूप में भारी भरकम रकम देते हैं। उदाहरण के लिए 2005 में अमेरिका ने अपने यहाँ के कपास उत्पादक किसानों को 25 हजार करोड़ रूपये की सहायता सब्सिडी के माध्यम से की थी। हालॉकि किसानों द्वारा लगभग 20 हजार करोड़ रूपये मूल्य का ही कपास पैदा किया गया था। वर्ष 2008 में अमेरिका ने अपने पारित कृषि–बिल में पाँच वर्षों के लिए 15 लाख 50 हजार करोड़ रूपये का प्रावधान कृषि–क्षेत्र के लिए किया था और 2002 से लगायत 2009 तक अपने किसानों को 13 लाख करोड़ रूपया प्रत्यक्ष सहायता के रूप में दे चुका है। इसी प्रकार तीस अन्य धनी देशों के द्वारा कृषि सब्सिडी में 21 प्रतिशत की वृद्धि करने के बावजूद भी 2008 में दी गई सब्सिडी के तुलना में 22 प्रतिशत की और बढ़ोत्तरी करके 2009 में सब्सिडी दी गई थी। वर्ष 2009 में इन देशों द्वारा बारह लाख साठ हजार करोड़ रूपये की सब्सिडी किसानों को दी गई थी। भारत और अन्य देश की सरकारें लगातार माँग करती रहती हैं कि अमरीका, यूरोप व अन्य विकसित देश अपने किसानों को कम सब्सिडी दें क्योंकि ज्यादा सब्सिडीज देने पर इन देशों के कृषि उत्पाद कम भाव पर विश्व बाजार में बिकते हैं फलस्वरूप भारत जैसे अन्य देशों के उत्पाद या तो बिकते नहीं या बिकते हैं तो बहुत कम। दुर्भाग्य यह है कि विकसित देश विकासशील देशों की इस माँग को एक हद तक ही मानते हैं। वास्तविकता यह है कि भारतीय किसानों की दयनीय दशा आधुनिक तकनीकी संसाधनों के कमी के कारण नहीं है बल्कि उनके उपजों का यथोचित मूल्य का न मिलना है। कृषि व सिचाई क्षेत्र और गैर कृषि क्षेत्रों पर खर्च किए गए सरकारी धन में असमानता, राष्ट्रीय धन तथा संसाधनों को औद्योगिक तथा व्यापारिक क्षेत्रों में लगाना, कृषि क्षेत्र को आत्मनिर्भर न बनने देना,

कृषि उत्पादन के साधनों के खर्चे काटकर ग्रामीण विकास के नाम पर धन खर्च किया जाना आदि ऐसे कारण हैं जिससे खेती तथा किसान बुरी तरह से प्रभावित होते हैं।

पिछले कई वर्षों के पंचवर्षीय योजनाओं पर खर्च किए धन के लेखा–जोखा से स्पष्ट होता है कि कृषि तथा सिंचाई के विकास पर सरकारी धन का खर्चा लगातार घट रहा है जबकि ग्रामीण विकास की योजनाओं पर बढ़ता जा रहा है। आकड़े बताते हैं कि इन तीनों के विकास पर 20 प्रतिशत के आस पास धन खर्च किया गया है तो अन्य क्षेत्रों पर लगभग 80 प्रतिशत। इतना धन अन्य क्षेत्रों पर क्यों खर्च किया जाता है?मतलब साफ है कि पूंजीपतियों को फायदा पहुँचाने के लिए। नाइट्रोजनिक खाद पैदा करने में भारत विश्व में दूसरे स्थान पर है और फास्फोरस युक्त खाद के मामले में तीसरे पर। हालॉकि पोटास युक्त रासायनिक खादों को विदेशों से मगाया जाता है।

**तालिका–1 :**

**कृषि–क्षेत्र में उपयोग होने वाले सामानों का लेखा–जोखा**

| वर्ष | रासायनिक खादों की कुल खपत (लाख टन) | रासायनिक खादों की खपत (कि0ग्रा0/हे0) | कीटनाशकों की खपत (हजार टन) | प्रमाणित/गुणवत्ता वाले बीज (लाख कुन्तल) | पम्पिंग सेट (प्रतिशत) | | बिजली प्रतिशत | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | | | डीजल चालित | बिजली चालित | अन्य क्षेत्र | कृषि क्षेत्र |
| 1991–92 | 127.28 | 69.84 | 72.13 | 57.5 | — | — | 71.80 | 28.20 |
| 1995–96 | 138.77 | 74.02 | 61.26 | 69.9 | 21.14 | 24.84 | 69.05 | 30.95 |
| 2000–01 | 167.02 | 89.63 | 43.58 | 86.27 | — | — | 73.24 | 26.76 |
| 2005–06 | 203.40 | 105.5 | 39.77 | 126.75 | 20.09 | 25.66 | 78.08 | 21.92 |
| 2009–10 | 264.86 | 135.76 | 41.82 | 257.11 | 19.01 | 25.13 | — | — |
| 2010–11 | 281.22 | 144.14 | 55.54 | 277.3 | — | — | — | — |

स्रोत – 1. डायरेक्ट्रेट ऑफ इकनामिक्स एण्ड स्टैटिस्टिक्स, डीएसी
2. सेन्ट्रल इलेक्ट्रीसिटी एथारिटी, नई दिल्ली।

देश में 1991–92 में रासायनिक खादों की कुल खपत 127 लाख टन थी जो 2010–11 में बढ़कर 281 लाख टन तक पहुँच गयी जिससे प्रतिहेक्टेयर के हिसाब से इन्हीं वर्षों में रासायनिक खादों की औसत खपत 70 किलो से बढ़कर 144 किलो हो गयी। इसी प्रकार खेती में प्रयोग होने वाले प्रमाणित / गुणवत्ता बीजों की मात्रा भी लगातार बढ़ती जा रही है। अधिक उपज बढ़ाने के चक्कर में कीटनाशक दवाइयाँ, डीजल / बिजली चालित पम्पिंग सेट और ट्रैक्टरों का उपयोग भी खेती में धड़ल्ले से किया जा रहा है। यही कारण है कि खेती दिन प्रतिदिन महंगी होती जा रही हैं जबकि किसानों को पहले इसमें कोई धन खर्च नहीं करना पड़ता था। एक तथ्य और गौर करने लायक है कि कृषि क्षेत्र के लिए बिजली की उपलब्धता दिनोदिन कम होती जा रही हैं जिससे किसान खेतों की सिचाई डीजल चालित पम्पिंग सेटों के माध्यम से करने को मजबूर हैं। प्रतिलिटर डीजल की कीमत 1972 की तुलना में आज 64 गुना से अधिक हैं जबकि ट्रैक्टर की कीमत पहले की अपेक्षा 36 गुना से भी अधिक हो गई है। चूंकि चीनी के उत्पादन में किसान के अलावा सरकार तथा चीनी–मिल–मालिकों की भी भागीदारी होती है। इसीलिए चीनी आज 32 गुना महंगी मिल रही है। सच तो यही है कि उद्योगपतियों के फैक्टरियों से उत्पादित सामानों की कीमतों में इससे भी कई गुना ज्यादा वृद्धि हुई है। ठीक इसी प्रकार चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों से लेकर वरिष्ठ आई.ए.एस. तक के सारे वेतन भोगी कर्मचारियों का वेतन 1970–72 की तुलना में छठें वेतनमान में 300 से लेकर 350 गुना तक बढ़ चुका है। माननीय सांसदों पर औसतन 37 लाख रूपया प्रतिवर्ष खर्च हो रहा है। इसके अतिरिक्त उन्हें 5 करोड़ रूपये प्रतिवर्ष खर्च करने का अधिकार भी सांसद निधि के माध्यम से दिया गया है। जिसका अधिकतम भाग कमीशनखोरी में चला जाता है। सारे लोगों का वेतन तथा अन्य मदों के नाम पर खर्च होने वाले धन का उत्पादन किसान और मजदूर ही करता है। फिर भी ये लोग इनकी मौलिक समस्याओं को सुलझाने में किसी प्रकार की कोई दिलचस्पी नहीं लेते जबकि इनके द्वारा उत्पादित धन पर ही ये ऐश करते हैं। इसके ठीक उलट किसानों द्वारा पैदा किए गए खाद्यानों की कीमतों में 16–17 गुना की ही वृद्धि की गई जिसके फलस्वरूप इनकी क्रय–शक्ति दिनोदिन कम होती गई और

इनकी स्थिति दयनीय बनती गयी। सरकार में बैठे हुए लोग तथा अधिकांश राजनैतिक दलों के नेतागण इस सच्चाई को जानते तो हैं पर मानते नहीं।

भारत तथा अन्य देशों में रासायनिक खादों की खपत के आकड़ों के मुताबिक अमेरिका, कनाडा, चीन, फ्रान्स व यूके जैसे विकसित देशों के किसानों की तुलना में भारतीय किसान रासायनिक खादों का उपयोग ज्यादा मात्रा में करते हैं। यह स्थिति तब है जब अमेरिकी किसानों के पास खेती के जमीन का क्षेत्रफल यहाँ के प्रति धनाड्य किसान की अपेक्षा कई गुना अधिक है और वहाँ छोटे किसानों की संख्या भी बड़े किसानों से बहुत कम है। अमेरिका में ज्यादातर बड़े किसान कारपोरेट फार्मिंग के तर्ज पर खेती करते हैं और वे खेती को व्यापार समझते हैं। अमेरिका में खाद की कम खपत होने का शायद एक कारण यह माना जाता सकता है कि वहाँ के किसान व्यापारियों और पूँजीपतियों की तरह कम लागत लगाकर अधिक लाभ कमाने की सोच रखते हों। अमेरिकी किसान सामान्यतः रासायनिक उर्वरकों और पीड़कनाशकों पर आश्रित रहता है। अधिक उपज देने वाले बीजों, उर्वरकों, पीड़कनाशकों, कीटनाशकों और खरपतवारनाशकों के अन्धाधुन्ध उपयोग से भारत में कृषि उत्पादन बढ़ा है लेकिन खेतों की उर्वरता घटी है। फलस्वरूप सिचाई के लिए पानी के अधिक मात्रा की आवश्यकता नीयत समय पर पड़ती रहती है। फिर तो सरकार को सिंचाई–पानी के आवश्यक मात्रा के अनुरूप सरकारी धन खर्च करके सिंचाई के लघु, मझोली तथा बड़ी परियोजनाओं को बढ़ाना चाहिए। किन्तु सरकार आवश्यकतानुसार पानी के साधनों की व्यवस्था आज तक नहीं कर सकी। इसीलिए तो सरकारी सिचाई संसाधनों से सिंचित रकबे में वृद्धि नहीं के बराबर हुई है और जो भी वृद्धि हुई है वह किसानों के निजी सिचाई साधनों के उपयोग करने के कारण हुई है। इसका मतलब है कि सरकार सिचाई–संसाधनों पर न तो धन खर्च करती है और न भविष्य में करना चाहती है। किसानों को यदि नये साधनों का उपयोग करके खेती करनी है तो निश्चित तौर पर पानी ज्यादा चाहिए। सरकार इसकी व्यवस्था करती नहीं मजबूरन किसानों को सिचाई के निजी साधनों का इन्तजाम हर हालत में किसी न किसी प्रकार से करना पड़ता है। एक तरफ सरकार किसानों को पर्याप्त मात्रा में बिजली सप्लाई

नहीं करती और दूसरी तरफ डीजल का दाम पहले से (1972 से) 64 गुना बढ़ गया। ऐसे हालात में सिचाई के निजी संसाधनों को लगाने के लिए और बीज, उर्वरक, दवाइयाँ, ट्रैक्टर, डीजल आदि खरीदने के लिए किसानों को सरकारी, गैर सरकारी बैंकों, कोआपरेटिव सोसाइटियों, सूदखोरों, महाजनों, व्यापारियों आदि से कर्जा लेना पड़ता है। सरकार भी यही चाहती है तभी तो सरकार अपने बैंको के अलावा पूँजीपतियों के बैंको से कर्जा लेने के लिए हमेशा उन्हें उकसाती रहती है ताकि कर्जों के जरिये किसान खेती के अधिकाधिक साधनों को खरीद सकें, भले ही उन्हें अपनी जान तक क्यों न गवाँनी पड़े। इन्हीं कर्जों के कारण देश में 70 से अधिक किसान हर महीने आत्महत्या कर रहे हैं। किसानों की अभावग्रस्तता और उनकी कर्जदारी को सरकार नजरअन्दाज करने के साथ ही उनके श्रम से उत्पादित धन को गैर कृषि क्षेत्र और उनके मालिकों के विकास पर खर्च करती है। अब तो देहाती इलाकों के रहने वाले सांसद, विधायक व सामान्य तथा गरीब नेतागण भी किसानों की मूल समस्याओं पर चर्चा न करके ग्रामीण विकास की योजनाओं पर ही मुख्य रूप से चर्चा करते हैं। इसके पीछे इनका अपना निजी स्वार्थ छिपा रहता है। ये जानते हैं कि ग्रामीण विकास की योजनाओं के चलते रहने से इसके माध्यम से इनके रिश्तेदारों तथा चहेतों को ठेका का काम मिलता रहेगा और वे धन कमाते रहेंगे। किसानों के द्वारा पैदा किया गया धन तो वास्तव में कृषि उत्पादन के साधनों के विकास पर खर्च होना चाहिए न कि ग्रामीण–विकास की योजनाओं पर। जबकि होता है इसके ठीक विपरीत। किसानों को यह बताना तथा समझाना बहुत जरूरी है कि उनके शारीरिक श्रम से पैदा किए गए धन में से खेती के साधनों के विकास पर सरकार द्वारा कम धन लगाया जाता है और ग्रामीण विकास के क्षेत्र पर अधिक। क्योंकि ग्रामीण विकास पर किये गए खर्चों को बताकर राजनेता चुनावों में वोट हासिल करते हैं। जिस दिन किसान यह सच्चाई जान जाएगा उसी दिन से ग्रामीण विकास के सतही व नकली कार्यक्रमों का विरोध वह स्वयं करने लगेगा।

कृषि–क्षेत्र और गैर कृषि क्षेत्रों पर खर्च किए गए सरकारी धनों में असमानता भी प्रतिवर्ष बढ़ रहा है। इस पर सवाल खड़ा करने पर सरकारी व गैरसरकारी प्रचारतंत्र के साथ ही साथ सरकारी बुद्धिजीवी वर्ग यही जवाब देता है कि

कृषि–क्षेत्र अब सम्पन्न तथा आत्मनिर्भर हो गया है। अतः अपने विकास के लिए उसे स्वयं धन लगाना चाहिए। किन्तु उनका यह तर्क निराधार और झूठा है। यह बात सही है कि कृषि–क्षेत्र की उत्पादकता बढ़ी है लेकिन इस क्षेत्र में लगे मजदूर, सीमान्त, लघु तथा मझोले किसानों की दशा पहले से भी ज्यादा बदतर हो गई है। क्योंकि खेती के लागत मूल्यों में लगातार बेतहाशा वृद्धि के कारण उन्हें प्रतिवर्ष घाटा होता रहता है। सरकारी आँकड़े भी इसी सच्चाई को प्रमाणित करते हैं। अतः कृषि–क्षेत्र के आत्मनिर्भर होने की बात बोगस एवं सत्य से परे है। एक कड़वी सच्चाई और भी है जिसकी चर्चा यहाँ पर करना आवश्यक है। पूँजीपतियों के कारखानों में कृषि–क्षेत्र के बहुत सारे उत्पादों को कच्चे माल के रूप में उपयोग करके विभिन्न प्रकार के खाद्य–पदार्थों को बनाया जाता है। इन खाद्य पदार्थों की बिक्री बढ़ाने के लिए पूँजीपतियों द्वारा विज्ञापनों में लाखों–करोड़ों रूपये की धनराशि मीडिया, सिनेमा जगत के कलाकारों तथा अन्य इसी प्रकार के लोगों पर मात्र प्रचार के लिए खर्च किया जाता है। हालॉकि इन विज्ञापनबाजों का काम सिर्फ उपभोक्ताओं को बहकाना–फुसलाना भर रहता है जिससे इनकी जेबों से पैसा निकलकर कम्पनियों के मालिकों की जेबों में चला जाय। किसानों के उपजों के बल पर ही इनको इतना लाभ होता है कि एक बहुत बड़ी रकम प्रचार के नाम पर खर्च करने के बाद भी ये मालामाल होते जा रहे हैं। क्या बुद्धिजीवियों को इस पर खामोश रहना चाहिए या इस सच्चाई को अपने बौद्धिक–क्षमता के माध्यम से लोगों के सामने लाना चाहिए। कृषि–क्षेत्र के उत्पादित धन का महज 1.5 प्रतिशत से भी कम हिस्सा इस क्षेत्र पर खर्च किया जाता है जबकि बाकी धन अन्य क्षेत्रों पर खर्च कर दिया जाता है। अतः इस क्षेत्र के आत्मनिर्भर बनने का प्रश्न ही नहीं उठता। आज किसानों को फैक्टरियों के उत्पादित सामानों को खरीदने में उनके उपजों में 16–17 गुना वृद्धि के बाद भी इस वृद्धि के सापेक्ष में 2 गुना से लगायत 50 गुना से अधिक की रकम चुकानी पड़ती है। उदाहरणस्वरूप 1972 में एक ट्रैक्टर की कीमत 18 हजार रूपये के आस पास थी। आज उसकी कीमत 6 लाख रूपये से अधिक है। 1972 में किसान 225 कुन्तल गेहूँ बेचकर एक ट्रैक्टर खरीद सकता था जबकि आज वह 500 कुन्तल बेचने के बाद शायद इसे खरीद पाये। यह स्थिति कमोवेश हर वस्तु के साथ है। सरकारी आकड़े के हिसाब से एक

हेक्टेयर क्षेत्रफल में किसान लगभग 30 कुन्तल गेहूँ पैदा करता है। 500 कुन्तल गेहूँ पैदा करने के लिए लगभग 18 हेक्टेयर जमीन की आवश्यकता पड़ेगी। जबकि जमींदारी उन्मूलन तथा सीलिंग एक्ट लागू होने के बाद से बड़े–बड़े किसानों के पास भी इतनी जमीन नहीं है। आखिरकार किस आधार पर सरकार कृषि–क्षेत्र के आत्मनिर्भरता की बात करती है। ऐसे हालात में वह अपने विकास के लिए आवश्यक धन कहाँ से लाएगा।

अंत में यही कहा जा सकता है कि कृषि और इससे जुड़े क्षेत्रों के विकास से ही ग्रामीण भारत के किसानों की आर्थिक समृद्धि सुनिश्चित की जा सकती है। इसके लिए होना यह जरूरी है कि सरकार कृषि क्षेत्र के उत्पादित धन को इसी क्षेत्र पर खर्च करे तथा इसमें लगने वाले सारे संसाधनों की कीमत को किसानों के पहुँच के अन्दर रखे और इनके उपजों के समर्थन–मूल्य को लागत–मूल्य के तुलना में कम से कम पाँच गुना करे तभी किसान खुशहाल होगा।

# एफडीआई के औचित्य पर सवाल

रीटेल कारोबार में विदेशी पूँजी निवेश को कृषि क्षेत्र की सारी बीमारियों का इलाज बताते हुए संसद के दोनों सदनों में विपक्ष के विरोध के प्रस्ताव को गिराने में सरकार ने सपा तथा बसपा के सहारे सफलता हासिल कर ली। किन्तु यह सफलता सरकार तथा इन दोनों पार्टियों की राजनैतिक चालबाजी के साथ ही साथ इनके पर्दे के पीछे खेले गये खेल को भी बताती है। क्योंकि इसके अगले ही दिन अमेरिकी कम्पनी वालमार्ट द्वारा यह खुलासा करना कि भारत के खुदरा बाजार में घुसपैठ करने के लिए उसने लॉबिंग पर 125 करोड़ रूपये की राशि खर्च की है। कम्पनी का यह खुलासा सरकार पर प्रश्न चिन्ह लगाता है। कारण अमेरिकी सांसदों का समर्थन जुटाने के लिए लॉबिंग पर जो भी धन खर्च किया जाता है उसके लिए अमेरिका में कानून है, जबकि भारत में लॉबिंग बनाने के लिए धन खर्च करने का प्राविधान कानूनन नहीं है। अखबारी खबरों के मुताबिक अपने ही देश में वालमार्ट को जनता के बगावती तेवर का सामना करना पड़ रहा है। परिणाम स्वरूप न्यूयार्क में आजतक यह कम्पनी अपना कोई भी स्टोर कहीं पर भी नहीं खोल पायी। शिकागो में जहाँ भी वालमार्ट के स्टोर खुले वहाँ के स्थानीय बाजार पर खतरनाक रूप से इसका पूर्णरूपेण कब्जा हो गया है। अमरीका में वालमार्ट के विरोध का प्रमुख कारण है इसके द्वारा ग्राहकों को विज्ञापनों के माध्यम से बरगला कर ठगना तथा स्थानीय रीटेल उद्योग को पूरी तरह से ठप्प कर देना। आखिरकार यूपीए सरकार किन कारणों से वालमार्ट जैसी विदेशी कम्पनियों को भारत के रीटेल कारोबार में पूँजी लगाकर धन कमाने की छूट देने हेतु अमादा और उतावली है? वे कौन से कारण थे जिसकी वजह से सपा व बसपा ने एफडीआई के विरोध में रहते हुए भी विपक्ष के एफडीआई के विरोध के प्रस्ताव को गिराने में परोक्ष या अपरोक्ष रूप से सरकार का समर्थन किया? जनता को इसका सही जवाब चाहिए।

संसद में सांसदों द्वारा रीटेल में एफडीआई के मुद्दे पर चर्चा के दौरान कही गयी फायदे–नुकसान की बातों या तथ्यों के क्या मायने होते हैं, विरोध में बोलने वाले सपा व बसपा के सांसदों ने इसका आकलन सोच–समझ कर नहीं किया। श्रीमती सुषमा स्वराज, नेता प्रतिपक्ष जब किसानों के दुख दर्द और उनके नुकसान की बात कह रही थीं उस समय अन्य विरोधी सांसदों द्वारा संसद में हंगामा करना साबित करता है कि ये

किसानों के हित के प्रति कितने गम्भीर हैं। बार बार स्पीकर को सदन की कार्यवाही सुचारू रूप से चलने देने के लिए इनसे आग्रह करना पड़ रहा था। श्रीमती सुषमा के अनुसार उपभोक्ता का हित भी नहीं होगा और न रोजगार का सृजन। छोटे बिचौलियों का स्थान बड़े–बड़े बिचौलिए ले लेंगे जिससे किसानों को फायदा तो होने से रहा उलटे उनका बहुत ज्यादा नुकासान होगा। वालमार्ट जैसी कम्पनियों का प्रभाव जैसे जैसे बढ़ेगा उसी के अनुपात में छोटे दुकानदार खतम होते जाएंगे। एफडीआई के मुद्दे पर आगाह करते हुए उन्होंने इसको नकारने के लिए अपील कीं। क्योंकि इसका यहाँ पर आना आमजन के हित में नहीं होगा। उन्होंने यह तथ्य भी सदन के सामने रखें कि अमरीका के 2012 के बजट में छोटे–छोटे व्यापारियों को वालमार्ट जैसी बड़ी कम्पनियों से बचाने के लिए अलग से प्रावधान किया गया है। क्या यह प्रमाणित नहीं करता कि भारत में एफडीआई लागू करना कितना खतरनाक होगा?सिब्बल जी के अनुसार बिचौलिए समाप्त हो जाएंगे और जो फायदा ये लेते थे वह अब किसान को मिलेगा। इन्हीं की एक टिप्पणी कि कोकाकोला कम्पनी भारत में जब आयी तो पंजाब में आलू, टमाटर की पैदावार बढ़ गयी।

सपा मुखिया ने जवाब में कहा कि पैदावार किसानों की मेहनत से बढ़ी, कोकाकोला के आने से नहीं। इनके अनुसार 20–25 करोड़ लोग बेरोजगार हो जाएंगे। यदि इन कम्पनियों से फायदा होता तो अमेरिका में इसका विरोध क्यों होता? शुरू शुरू में कुछ ठीक ठाक चलेगा परन्तु जब 5 करोड़ खुदरा व्यापारी समाप्त हो जाएंगे तब वालमार्ट आदि विदेशी कम्पनियाँ मनमानी पर उतर आएंगी। एफडीआई लागू करके देश की जनता के साथ छल न करें तथा किसानों की किसानी मत छीने। कातर भाव से उन्होंने बयान किया कि आजादी के आन्दोलन में गांधी जी ने विदेशी कपड़ों को जलाने के लिए आम जनता से गुजारिश की थी, आज गांधी की कांग्रेस एफडीआई तथा विदेशी कम्पनियों की पक्षधर बन गई है। बसपा के सांसद दारा सिंह चौहान का कथन था कि सरकार एफडीआई के माध्यम से विदेशी कम्पनियों को बढ़ावा देकर किसानों और मजदूरों को समाप्त करने की साजिश रच रही है। इन तर्कों के ठीक उलट संसद में वोटिंग के समय व्लट जाना क्या जनता के साथ छल करना नहीं है?ऐसा व्यवहार इन दलों की विश्वसनीयता पर प्रश्नचिह्न लगाने के साथ ही साथ यह भी उजागर करता है कि अब नीतियों पर फैसला संसद के बजाय बन्द कमरों में सौदेबाजी से होता है।

वास्तव में जिन तर्कों के साथ रिटेल में एफडीआई के मुद्दे पर संसद में बहस होनी चाहिए थी उन तर्कों को विपक्ष बहस के दौरान दमदार ढंग से सदन में प्रस्तुत नहीं कर सका। सत्ता पक्ष और विपक्ष के तर्क का मुख्य बिन्दु एफडीआई के आने से केवल फायदे–नुकसान तक ही सीमित रहा। जबकि बहस का केन्द्र बिन्दु होना चाहिए था कृषि–विपणन ढाँचे की खामियाँ और उसमें सुधार। कृषि विपणन ढाँचे की खामियों के चलते कृषि उपजों के व्यापार में बिचौलियों की भूमिका और उनका वर्चस्व बढ़ जाता है। इसी वजह से किसानों को उनकी उपज का सही दाम नहीं मिल पाता तथा उपभोक्ताओं को भी अधिक मूल्य चुकाना पड़ता है। दैनिक जागरण के 7 दिसम्बर 2012 में प्रकाशित आकड़ें बताते है कि 1950–51 में उपभोक्ताओं द्वारा चुकायी गई कीमत का 89 प्रतिशत किसानों को मिलता था जबकि आज उसे मात्र 34 प्रतिशत ही मिलता है। अर्थात उपभोक्ताओं द्वारा चुकायी गई कीमत का पहले 11 प्रतिशत और आज 66 प्रतिशत हिस्सा उन बिचौलियों की जेब में चला जाता है जो कभी भी खेती नहीं करते। ये आकड़े क्या बिचौलियों की भूमिका को सत्यापित नहीं करते? वालमार्ट या अन्य विदेशी कम्पनियाँ अन्य फायदे के साथ ही इस हिस्से के लिए भी हर हथकंडा अपनाकर भारत के खुदरा व्यापार में आना चाहती हैं। सरकार भी इसको बखूबी जानती तथा समझती हैं, किन्तु डब्लूटीओ व अमेरिकी सरकार के भारी दबाव के चलते किसानों की अनदेखी करते हुए रीटेल में एफडीआई के प्रस्ताव को हर प्रकार के जुगाड़ लगाकर संसद के दोनों सदनों से पास करवाना चाहती थी। सरकार चाहती तो विपणन ढाँचे और मण्डी व्यवस्था में सुधार करके किसानों तथा उपभोक्ताओं के हित की रक्षा आसानी से कर सकती थी परन्तु छोटे बिचौलियों के बदले एफडीआई के माध्यम से बड़े बिचौलियों के लिए पुख्ता जमीन तैयार कर दी। रीटेल में एफडीआई समर्थकों का दावा है कि विदेशी रीटेलर हमारे किसानों को प्रोत्साहित करेंगे। लेकिन जिन–जिन देशों में विदेशी रीटेलर कब्जा जमा चुके हैं वहाँ पर किसानों के प्रोत्साहन सम्बन्धित कोई भी प्रमाण नहीं मिलता। हमें तो डर है कि उपज के गुणवत्ता के आधार पर कान्ट्रैक्ट खेती की शुरूआत करके ये कम्पनियाँ किसानों को कहीं खेतिहर मजदूर में न बदल दें। 1995–2010 के दौरान अमरीकी सरकार ने किसानों को सब्सिडी के रूप में 167 अरब डालर की सहायता दी थी और यूरोपीय संघ ने अकेले अपने किसानों को 2010 में 51 अरब डालर की सब्सिडी देकर सहायता की थी। अतः सरकार का यह दावा भी खोखला साबित होगा कि एफडीआई के कारण किसानों की आमदनी बढ़ेगी, क्योंकि यूरोप अमेरिका में यदि आज भी किसानी जीवित है तो मात्र सरकारी सब्सिडी के कारण विदेशी रीटेलरों के

वजह से नहीं।

एक हकीकत यह भी है कि खुदरा व्यापार में मजदूरी करने वाले या तो दलित हैं या पिछड़ी जाति के। बसपा व सपा अपने आप को इन जातियों का प्रतिनिधि बताती हैं और इनकी भलाई करने का दावा करती हैं। जबकि बहुतेरे ऐसे उदाहरण हैं जिससे इनका दावा झूठा साबित हो जाता है। मुलायम सिंह यादव यह बात भलिभाँति जानते हैं कि 5 करोड़ छोटे–छोटे खुदरा व्यापारियों का व्यवसाय पूरी तरह से चौपट हो जाएगा और ये दाने–दाने को मोहताज हो जाएंगे। हर एक व्यापारी के परिवार में यदि 4 या 5 सदस्य होंगे तो 20–25 करोड़ लोगों की रोजी–रोटी छिन जाएगी। खुदरा व्यापार में लगे मजदूरों को भी जोड़ दिया जाए तो संख्या 30–35 करोड़ तक पहुँच जाएगी। भारत की कुल जनसंख्या 120 करोड़ है। कृषि पर आधारित लोगों की संख्या 60 से 65 प्रतिशत है, अर्थात किसानी पर आश्रित जनसंख्या 72 से 78 करोड़ होगी। रीटेल में एफडीआई से किसानों को कोई फायदा तो होने वाला नहीं है सरकारी तंत्र चाहे जिनता भी जोर–शोर से फायदे को गिनाए। क्योंकि देशी या विदेशी कम्पनी मात्र मुनाफे पर संतोष नहीं करतीं बल्कि प्रतिवर्ष वे मुनाफे के दर में इजाफा चाहती हैं। इसको ऐसे समझा जा सकता है कि पिछले साल में जितना लाभ हुआ है अगले वर्ष भी यदि उतना ही लाभ होता है तो इस लाभ को कम्पनियाँ मुनाफा नहीं मानती हैं। ऐसी स्थिति में जब बिचौलिए समाप्त नहीं होंगे और तय है कि नहीं ही होंगे तो फिर किसानों को फायदा कैसे हो पाएगा। अर्थात सरकार की यह सोच कि किसानों को लाभ होगा मात्र ख्याली पुलाव बनकर रह जाएगा। अतः आने वाले दिनों में किसानों की स्थिति और बद्तर होने से भगवान भी नहीं रोक पाएंगे। भारत में एफडीआई के रीटेल में प्रवेश से 105 से 116 करोड़ लोग प्रभावित होंगे। इतनी बड़ी आबादी के हित को दरकिनार करना कहाँ तक न्याय संगत होगा? क्या यह गरीबों और किसानों के श्रम का दोहन करके उन्हें और गरीब बनाकर भुखमरी के खाईं में ढकेलने की साजिश नहीं है?

एक बुद्धिजीवी और उनके किसान भाई का तर्क है कि रिटेल में विदेशी पूँजी निवेश से किसानों को अब ज्यादा लाभ मिलेगा, मात्र इनकी कोरी कल्पना भर है। किसानों को लाभ तब होगा जब खेती का लागत मूल्य कम होगा और उनकी उपज का मूल्य अधिक होगा अर्थात उनके पैदावार को ज्यादा दाम देकर खरीदा जाएगा। ऐसे तथाकथित सरकारी बुद्धिजीवी व सरकार इस मामूली सी गणित को समझते क्यों नहीं? क्या वालमार्ट या अन्य विदेशी कम्पनियाँ किसानों को खाद, पानी, बीज, बिजली, डीजल, ट्रैक्टर, पम्पिंग सेट,

कीटनाशक दवाइयाँ आदि सस्ते दाम पर उपलब्ध करा देंगी?शायद नहीं, तो फिर ये कम्पनियाँ क्या कोई जादुई करिश्मा करके किसानों को फायदा देंगी। भारत का खुदरा व्यापार फिलहाल 500 अरब डालर का है जो 2020 तक 1000 अरब डालर पर पहुँच जाएगा। इसीलिए खुदरा क्षेत्र की दिग्गज अमरीकी कम्पनी वालमार्ट ने भारत में आने के लिए रास्ता बनाने पर लॉबिंग में 125 करोड़ रूपये की रकम खर्च की ताकि भारत में पैर जमाकर मुनाफा कमाया जा सके। इसका मकसद है गरीब, मजदूर, किसान व आमजन को लूटने की भले ही ये तंगहाली में जीते हुए आत्महत्या करने को विवश होते रहें। हरितक्रान्ति का नारा देकर पैदावार बढ़ाने के लिए किसानों को प्रेरित किया गया। फलस्वरूप प्रति हेक्टेयर उपज तो बढ़ गयी बावजूद इसके भी किसान आत्महत्या करते रहे। सरकारी आकड़े के मुताबिक पिछले 20 वर्षों से 4 से अधिक किसान प्रतिदिन आत्महत्या कर रहे हैं। इसका मतलब साफ है कि सरकार द्वारा जो भी सहायता किसानों को उनकी भलाई के नाम पर दी जाती है उससे खेती का लागत मूल्य घटता नहीं है बल्कि और बढ़ जाता है और इसके उपज का दाम कम मिलता है। यही कारण है कि किसान कंगाल बनता जा रहा है। जब अपनी सरकार ही आत्महत्याओं को रोकने में पूर्ण रूप से विफल रही तो विदेशी कम्पनियों के जरिये इन आत्महत्याओं को सरकार कैसे रोक पाएगी? एफडीआई लागू करके सरकार तथा समर्थन करने वाली सपा व बसपा ने अपने आपको आमजनों का विरोधी ही प्रमाणित किया हैं। सरकार तथा ये पार्टियाँ इस गफलत में न रहें कि अनपढ़ या कम पढ़ा लिखा किसान इनकी चालों को नहीं समझता। वह सबकुछ जानता और समझता है, पर मजबूर इसलिए है कि उसे कारपोरेट सेक्टर के व्यूह में अभिमन्यु की भाँति घेर लिया गया है। जिसदिन ये अपनी शक्ति पहचान कर संगठित हो जाएंगे उस दिन सरकार और इनके साथ छल करने वाले नेताओं तथा पार्टियों को उनकी औकात बता देंगे। सरकार हर तरह से प्रयास करके खेती में लगने वाले लागत मूल्य को कम करके तथा उपज का दाम बढ़ाकर किसानों को बचा सकती है, विदेशी कम्पनियों को व्यापार करने की अनुमति देकर नहीं। अतः सरकार को खेती का लागत मूल्य कम करने के लिए अपने स्तर पर हर सम्भव प्रयास करना चाहिए। यही सरकार का समझदारी भरा कदम होगा।

भारत में 5 करोड़ 80 लाख छोटे किसान, 1 करोड़ 20 लाख छोटे रीटेलर और 2 करोड़ 60 लाख छोटे और मझोले उद्यम हैं। इन्हीं के भरोसे 45 करोड़ से ज्यादा लोगों की रोजी–रोटी चलती रहती है। इतने लोगों के पेट की भूख के साथ खिलवाड़ करना, देश को खतरनाक राजनैतिक दिशा में जानबूझकर ढकेलना होगा। सरकार का यह भी दावा है कि रीटेल में एफडीआई के आने से तीन साल में एक करोड़ रोजगार पैदा होंगे जिसमें

40 लाख प्रत्यक्ष रूप में तथा बाकी छोटे–मोटे कामों में पैदा होंगे। सरकार के इस दावे की पोल खोलने के लिए नीचे दिए गए आकड़े काफी हैं।

## चार रीटेलरों के स्टोर और उसमें काम करने वाले लोगों का लेखा–जोखा

| कम्पनी का नाम | कुल स्टोर की संख्या | कुल कर्मचारियों की संख्या | प्रति स्टोर कर्मचारियों की संख्या |
|---|---|---|---|
| वालमार्ट | 9,826 | 21,00,000 | 214 |
| कारेफूर | 15,937 | 4,71,755 | 30 |
| मेट्रो | 2,131 | 2,83,380 | 133 |
| टेस्को | 5,380 | 4,92,714 | 92 |
| | | औसत | 117 |

40 लाख नौकरियाँ पैदा करने के लिए अकेले वालमार्ट कम्पनी को 18700 सुपरमार्केट खोलने होंगे। इन चारों रीटेलरों के प्रति स्टोर कर्मचारियों की औसत संख्या 117 होगा। अतः 40 लाख लोगों की नौकरी के लिए 34,180 से अधिक स्टोर खोलने होंगे अर्थात 53 शहरों पर 64 सुपरमार्केट। पहले से खुले हुए सुपरमार्केट के आँकड़े बताते हैं कि इनके स्टोर में एक नौकरी पर 17 लोगों की नौकरी चली जाती है। इस प्रकर 40 लाख लोगों को नौकरी मिलने की दशा में 6 करोड़ 80 लाख बेरोजगार हो जाएंगे। भारत में असंगठित खुदरा क्षेत्र में 4 करोड़ से ज्यादा लोग रोजगार में लगे हैं। जो पूरी तरह से समाप्त हो जाएंगे।

निचोड़ में यही कहा जा सकता है कि सरकार रीटेल में एफडीआई के माध्यम से नहीं बल्कि किसान हितैषी नीतियाँ बनाकर ही किसानों का हित कर सकती है और विशाल विदेशी रीटेलरों को भारत में आने से रोक कर देश के 4 से 5 करोड़ खुदरा व्यापारियों को समाप्त होने से बचा सकती है। गांधी की कांग्रेस को उनके द्वारा सुझाए गए मॉडल को अपनाना चाहिए जिसके अनुसार आमजन के हाथों में संसाधनों की मालकियत रहे, गाँव मुख्य इकाई बने और उत्पादन तंत्र का आधार लघु उद्योग हो न कि भारी उद्योग। गांधी का यह मॉडल रोजगार सृजन, करेगा, संसाधनों की जो लूट मची है उसे रोकेगा और समतामूलक अहिंसक समाज का निर्माण करेगा। कांग्रेस गांधी जी के इस मॉडल को यदि नहीं अपनाएगी तो यह निश्चित है कि आजादी के बाद की उनकी आखिरी इच्छा ''कांग्रेस को अब भंग कर देना चाहिए'' को अपने कारनामों से पूरा कर देगी।

# किसान आत्महत्या बनाम कारपोरेट परस्त नीतियाँ

लोकतंत्र में आमजनों विशेषकर मजदूरों और किसानों के हित को ध्यान में रखके सरकारी आर्थिक नीतियों को निर्धारित करके देश के सत्तर प्रतिशत से अधिक आबादी को विकास के रास्ते पर ले जाने के बाद ही देश का सम्पूर्ण विकास होगा। लेकिन सरकार ऐसा न करके फरेबी चाल–चलकर किसानों को भूखमरी में ढकेलकर आत्महत्या करने के लिए मजबूर करती जा रही है। आखिरकार इसके पीछे सरकार की मंशा क्या है?सरकार जानती है कि भारत की अर्थव्यवस्था में किसानों का बहुत बड़ा योगदान है जिसे किसी भी तरह से नकारा नहीं जा सकता। लेकिन कड़वी सच्चाई यह भी है कि 1954–55 से लगायत 2010–11 आते आते खाद्यानी अनाजों की उपज 631 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर से बढ़ाकर 1921 किग्रा प्रति हेक्टेयर करके अर्थात तीन गुनी उपज बढ़ाकर दूसरों को भरपेट भोजन कराने वाला किसान स्वयं दो जून की रोटी के लिए मोहताज़ है और भूखे पेट सोने के लिए मजबूर हैं। सरकार प्रतिवर्ष योजनाओं पर व्यय होने वाली ज्यादातर राशि कर्जा लेकर पूरा करती है जबकि वह चाहती तो इस राशि को धनी वर्गों के उपर अधिक कर लगाकर उसकी वसूली करके पूरा कर सकती है। परन्तु सरकार ऐसा नहीं कर पाती। वास्तव में सरकार देशी–विदेशी पूँजीपतियों और कारपोरेटों के मजबूत मकड़जाल में इस कदर फँस गयी है कि उसे औरों के हित की बात बेमानी लगती है, विशेषकर किसानों के हित की। आगे दिए गए सरकार के ही आकड़ों का विश्लेषण उसकी मानसिकता की पोल को स्वयं खोल देता है।

| क्षेत्र | वर्ष | | | | (आंकड़े प्रतिशत में) | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | 2005-06 | 2006-07 | 2007-08 | 2008-09 | 2009-10 | 2010-11 (RE) |
| कृषि व सम्बन्धित क्षेत्र | 5.1 | 4.2 | 5.8 | -0.1 | 0.4 | 6.6 |
| औद्योगिक | 9.7 | 12.2 | 9.7 | 4.4 | 8.0 | 7.9 |
| सेवा | 11.0 | 10.1 | 10.3 | 10.1 | 10.1 | 9.4 |
| सकल घरेलू उत्पाद | 9.5 | 9.6 | 9.3 | 6.8 | 8.0 | 8.5 |

भारत की सकल घरेलू उत्पाद में कृषि व कृषि सम्बन्धित क्षेत्रों की भागीदारी 2004–05 में 19.00 थी जो घटकर 2009–10 में 14.6 हो गयी जबकि सेवा क्षेत्र का हिस्सा 53.00 से बढ़कर 57.3 हो गया। जहाँ तक विभिन्न क्षेत्रों के विकास दर की बात की जाय तो कृषि व सम्बन्धित क्षेत्र का विकास दर 5.1 प्रतिशत 2005–06 से घटते हुए 2009–10 में 0.4 प्रतिशत तक आ गया। हांलाकि 2008–09 में उसकी गिरावट ऋणात्मक में आँकी गई थी। इसी अवधि में सकल घरेलू उत्पाद का कुल विकास दर 9.5 प्रतिशत से घटकर 8.0 प्रतिशत हो गया था। जब कृषि का विकास दर ऋणात्मक था उस समय जीडीपी का यह दर सबसे कम अर्थात 6.8 प्रतिशत था। जो इस बात का सरकारी दस्तावेजी अकाट्य

सबूत है कि कृषि क्षेत्र संकट में है इसीलिए देश भी संकटग्रस्त है। इसके बावजूद सरकार ने किस प्रकार की सहायता इस क्षेत्र को संकट से उबरने के लिए दी है इसका खुलासा वह क्यों नहीं करती है? अगर करती भी है तो कभी–कभार किसानों के कर्जे को माफ करती किन्तु इस कर्जमाफी का पूरे देश में ढिढोरा पीटकर अपने आपको किसानों का हितैषी बतलाने से भी नहीं चूकती।

| क्षेत्र | वर्ष | | | | (आंकड़े प्रतिशत में) | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | 2004-05 | 2005-06 | 2006-07 | 2007-08 | 2008-09 | 2009-10 | 2010-11 (RE) |
| कृषि व सम्बन्धित क्षेत्र | 19.0 | 18.3 | 17.4 | 16.8 | 15.7 | 14.6 | 14.3 |
| औद्योगिक | 27.9 | 27.9 | 28.6 | 28.7 | 28.1 | 28.1 | 28.0 |
| सेवा | 53.0 | 53.8 | 54.0 | 54.5 | 56.2 | 57.3 | 57.7 |
| सकल घरेलू उत्पाद | 100.0 | 100.0 | 100.0 | 100.0 | 100.0 | 100.0 | 100.0 |

**स्रोत** : सेन्ट्रल स्टैटिस्टिक्स आफिस, नई दिल्ली

दूसरी तरफ कारपोरेटों के आयकर की माफी जो किसानों की कर्जमाफी से हजारों गुना अधिक होती है सरकार उसे चुपके से माफ कर देती है। क्या यह पूँजीपतियों को अप्रत्यक्ष रूप से अधिक से अधिक लाभ देते रहने का प्रमाण नहीं है?इस सच्चाई को देश के सभी सांसद जानते हुए भी मौन रहते हैं क्यों?

सेवा क्षेत्र की प्रतिशत भागीदारी 53.0 प्रतिशत (2004–05) से बढ़ते हुए 57.3 प्रतिशत (2009–10) तक पहुँच गया और इस क्षेत्र का विकास दर इसी अवधि के लिए 11.0 प्रतिशत से घटकर 10.1 प्रतिशत हो गया। अर्थात इस क्षेत्र के विकास दर के गिरावट (1 प्रतिशत) से साढ़े चार गुना से अधिक गिरावट (4.7 प्रतिशत) कृषि क्षेत्र के विकास दर में पायी गई, जो कृषि और इससे सम्बन्धित क्षेत्र के संकटग्रस्त होने का दूसरा सबूत है। यह कितनी आश्चर्यजनक बात है कि सेवा क्षेत्र के विकास दर में गिरावट के बावजूद भी सकल घरेलू उत्पाद में इस क्षेत्र की प्रतिशत भागीदारी लगातार बढ़ती रही, जिसका अर्थ है कि कृषि क्षेत्र के संकटग्रस्त रहते हुए सरकार विलासिता के क्षेत्रों को बढ़ावा देती रही, किसानों के मौत के कीमत पर। क्या यह नीति निर्धारकों का जघन्य अपराध नहीं है?

सत्र 2006–07 को अपवाद मान लिया जाय जिसमें औद्योगिक क्षेत्र के विकास दर में 3.5 प्रतिशत की वृद्धि का आंकलन सरकारी लेखा–जोखा में अंकित है तब भी इस क्षेत्र के विकास दर में 2004–05 से 2009–10 तक गिरावट का ही प्रमाण मौजूद है। वहीं पर सकल घरेलू उत्पाद में इसकी प्रतिशत हिस्सेदारी 27.9 प्रतिशत (2004–05) से बढ़ती हुई 28.1 प्रतिशत (2009–10) में हो गयी। यहाँ पर एक बार फिर सरकारी दस्तावेज इस सच्चाई का ही सबूत पेश करते हैं कि सेवा क्षेत्र की तरह औद्योगिक क्षेत्र के विकास दर में

गिरावट के बाद भी सरकार द्वारा इन क्षेत्रों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अरबों खरबों रूपये की सहायता के उपरान्त सकल घरेलू उत्पाद में औद्योगिक क्षेत्र का योगदान (0.2 प्रतिशत) नगण्य वृद्धि हुई। यदि इन क्षेत्रों की तरह सरकार कृषि क्षेत्र में भी धन लगाती तो आज देश की तस्वीर ही कुछ और होती।

यूपीए सरकार का यह कथन कि कृषि क्षेत्रों के विकास दर में गिरावट का कारण सूखा भी है। यदि सूखे के वजह से कृषि क्षेत्र के विकास दर में गिरावट आयी तो इसका दोष किसानों के सर मढ़ना गलत होगा। यह तो सरकार व सरकारी तंत्र का निकम्मापन ही कहा जा सकता है। क्योंकि सरकार यह जानते हुए भी कि कृषि क्षेत्र संकट के दौर से गुजर रहा है तथा किसानों की दशा दयनीय है फिर भी खेतों की सिचाईं के लिए उचित मात्रा में पानी की व्यवस्था नहीं करती। यदि उचित मात्रा में व्यवस्था की गई होती और किसानों को कम दाम पर सिंचाई के साधन मुहैय्या कराए गये होते तो अन्य क्षेत्रों में सरकारी सहायता के बावजूद जिस प्रकार की गिरावट आँकी गई वैसी गिरावट कृषि क्षेत्र में कभी नहीं होती। फलस्वरूप अन्य क्षेत्रों में सहायता के बाद सकल घरेलू उत्पाद में जो गिरावट लगातार देखने को मिल रहा है, वह कभी नहीं होता और देश खुशहाली की तरफ अग्रसर होता। क्या सरकार के पास इसका कोई जबाव है?

कृषि क्षेत्र में गिरावट के कारण समाज में जो बेइन्तहा बेरोजगारी फैली है और इसके कारण जो गरीबी और भुखमरी है, उसको दूर करने के लिए ही सरकार मनरेगा जैसे कार्यक्रम चलाती है। ऐसे ही कार्यक्रम स्वास्थ्य व शिक्षा में चलाए जा रहे है भले ही इन कार्यक्रमों के नाम कुछ भी हों। इन कार्यक्रमों का भरपूर फायदा भी आम आदमी नहीं उठा पा रहा है जबकि सरकार इन्हें चलाने के लिए बेतहाशा धन खर्च रही है। हाँलाकि यह कार्यक्रम गरीब व आम आदमी को सिर्फ जीवित ही रख सकता है। वह साधारण जिन्दगी भी बसर नहीं कर सकता। इन कार्यक्रमों में बेहिसाब धन खर्च करके अन्तिम उद्देश्य मात्र औद्योगिक क्षेत्रों के उत्पादों को खरीदकर इन क्षेत्रों के मालिकों को फायदा पहुँचाने तक ही सीमित रहता है। यदि इसके आधे धन को भी कृषि क्षेत्र के सिंचाई पर खर्च किया जाता तो कृषि उत्पादों में बढ़त के साथ ही देश के सकल घरेलू उत्पाद में भी वृद्धि होती। परन्तु सरकार का यह रवैया भी आम जन के समझ के बाहर है।

किसानों की एकता कभी भी न बन पाए और देशी–विदेशी पूँजीपतियों को लाभ पहुँचता रहे इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर सारी राजनैतिक व आर्थिक नीतियाँ बनायी व चलाई जाती हैं। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जातिवादी, धर्मवादी, क्षेत्रवादी व भाषावादी राजनीतियाँ संचालित की जाती हैं ताकि किसान इसी में उलझे रहें और सरकार उद्योगपतियों को बिना किसी रूकावट के अरबों–अरबों की सहायता देकर लाभ दर लाभ पहुँचाती रहे। भले ही किसान आत्महत्याएँ ही क्यों न करते रहें। क्या हम सभी

किसान, मजदूर व आम जनता को मिल बैठकर इस पर विचार नहीं करना चाहिए? क्या हमें जातिवादी, धर्मवादी, क्षेत्रवादी व भाषावादी राजनीति करनी चाहिए?क्या हम लोगों की समस्याओं का समाधान इस प्रकार की राजनीति से हल होना सम्भव है? इसका उत्तर होगा–कभी नहीं।

सेन्ट्रल स्टैटिस्टिक्स आफिस, नई दिल्ली के अनुसार कृषि क्षेत्र की उत्पादकता में बढ़त पूँजी निर्माण पर निर्भर करती है। कृषि क्षेत्र के सकल घरेलू उत्पाद के सापेक्ष इस क्षेत्र की सकल पूँजी निर्माण जो 2004–05 में 13.5 प्रतिशत थी बढ़ते हुए 2010–11 में 20.1 प्रतिशत तक पहुँच गयी। कृषि क्षेत्र की सकल पूँजी निर्माण लगातार बढ़ने का यही अर्थ निकाला जाएगा कि इस क्षेत्र की उत्पादकता भी 2004–05 से 2012–11 तक लगातार बढ़ती रही। यह बहुत ही ज्वलंत और महत्वपूर्ण प्रश्न है कि किसानों द्वारा कृषि क्षेत्र की उत्पादकता हर साल बढ़ाने के बाद भी उसकी तंगहाली दिन पर दिन क्यों बढ़ती जा रही है? उत्पादकता बढ़ने से तो किसान की दीन–हीन दशा में सुधार होना चाहिए, किन्तु हो रहा है ठीक इसके उलट।

कृषि मंत्रालय, भारत सरकार के आकड़े बताते हैं कि 2004–05 से 2005–06 तक खाद्यानी फसलों के बोए गए रकबे की वृद्धि की तुलना में कृषि क्षेत्र के उत्पादन में चार गुनी वृद्धि दर्ज की गई और 2009–10 से 2012–11 तक यही वृद्धि साढ़े तीन गुनी रही। इसी मंत्रालय का दूसरा आकड़ा भी सत्यापित करता है कि 1954–55 से 2010–11 तक कुल खाद्यानी अनाजों की उत्पादकता में प्रति हेक्टेअर के हिसाब से तीन गुना बढ़त रिकार्ड किया गया। इसके बावजूद सच तो यह है कि सरकारी आकड़ों के मुताबिक पिछले 16 वर्षों में दो लाख नब्बे हजार किसान आत्महत्या कर चुके हैं। इस दर्दनाक सच्चाई को जानते हुए भी मौजूदा दौर में देश व प्रदेश की सरकारें औद्योगिक घरानों के सामने घुटना टेक चुकी हैं। इसीलिए अपनी जिम्मेदारियों से विमुख होकर किसानों को मरने के लिए छोड़ देती है। आत्महत्या के ये आकड़े तब सामने आ रहे हैं जब सरकार यह कहती है कि हम किसान–हितैषी आर्थिक नीतियों को लागू करके किसानों के आर्थिक स्थिति में सुधार कर रहे हैं। इन्हें यह बातें पता नहीं कब समझ में आएगी कि इनकी आर्थिक नीतियाँ किसानों के लिए झूठ का पुलीन्दा बनकर रह गयी हैं।

दुःखद पहलू यह है कि यदि इसी प्रकार सरकार और सरकारी आर्थिक नीतियाँ किसानों का दोहन–शोषण करती रहीं तो निश्चित तौर पर किसान या तो किसानी छोड़ देगा या आत्महत्या करते–करते एक दिन खतम हो जाएगा। इतना ही नहीं

सरकारी आकड़े यह भी दर्शाते हैं कि तीन गुना उपज बढ़ने के बाद भी खाद्यान की उपलब्धता प्रतिव्यक्ति हर साल कम होती जा रही है। क्या सरकार लोगों की भूख अन्न के बदले रूपये–पैसों से शान्त करेगी?लगता है कि इसकी समझ कारपोरेटी–परस्त सरकारों को तब आएगी जब देश भूख के बारूद पर खड़ा होगा और एक छोटी चिनगारी पूरे देश को जलाकर राख कर देगी। अतः समय रहते किसान–हितैषी आर्थिक नीतियाँ बनाकर देश को बचाने की दिशा में सरकारें कार्य करें तो अच्छा होता।

# कुपोषण, भुखमरी और जमीन अधिग्रहण पर मीडिया मौन क्यों?

सरकारी आकड़े के अनुसार भारत की आबादी सन् 1941 में 31.87 करोड़ थी जो बढ़ती हुई 2001 में 102.70 करोड़ तक पहुँच गयी थी। आज भारत की कुल आबादी 121 करोड़ से ऊपर है। एक रिपोर्ट के अनुसार 2020 तक देश की आबादी अनुमानतः 133 करोड़ और 2040 आते–आते 157 करोड़ तक पहुँच जाएगी। देश अनाज के मामले में भले ही आत्मनिर्भर हो गया हो किन्तु हकीकत यह है कि इस देश में दो जून का भोजन सभी के लिए उपलब्ध नहीं है। 32 करोड़ देशवासी ऐसे हैं जिन्हें एक वक्त भूखे पेट ही सोना पड़ता है। वैश्विक खाद्य सुरक्षा सूचकांक के आकड़े बताते है कि भारत में 68.5 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे रहते हुए अपना जीवन यापन कर रही है और 22 करोड़ 46 लाख लोग कुपोषण के शिकार हैं। करीब पाँच हजार बच्चे प्रतिदिन कुपोषण के चलते मर जाते हैं। आज स्थिति यहाँ तक आ पहुँची है कि विश्व के कुल मरने वाले बच्चों की संख्या में एक तिहाई संख्या भारतीय बच्चों की ही है। इतना ही नहीं बल्कि कुपोषण के चलते मरने वाले पाँच वर्ष की उम्र वाले 21 प्रतिशत बच्चे भी यहीं के हैं। ऐसा लगता है कि हमारे देश में बाल कुपोषण की दर कुछ समय के बाद सब–सहारा अफ्रीका के दर के आस पास पहुँच जाएगी जबकि लाखों टन अनाज सरकारी गोदामों में बरबाद होते रहो है। सुप्रीम कोर्ट ने तो अनाज बर्बादी को संज्ञान में लेते हुए गरीबों को मुफ्त अनाज बाँटने की सलाह तक दे डाली थी क्योंकि सबसे खराब खाद्य सुरक्षा वाले 81 देशों में भारत 67वें स्थान पर है जबकि रवांडा 60वें पर। हॉलाकि खाद्य सुरक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम चलाने वाले 105 देशों में भारत 31वें स्थान पर है। देश की जनसंख्या और खाद्यान उत्पादन के दरों में वृद्धि के तुलनात्मक अध्ययन से यह सच्चाई सामने आती है कि 1961–71 में आबादी की वृद्धि दर यदि 2.24 प्रतिशत थी तब खाद्यान उत्पादन वृद्धि दर 2.37 प्रतिशत था। हालात यह है कि 2001–10 में आबादी के वार्षिक वृद्धि दर 1.65 प्रतिशत के तुलना में खाद्यान उत्पादन वृद्धि दर मात्र 1.03 प्रतिशत अर्थात आबादी के वृद्धि दर से कम है। ये आकड़े इस हकीकत को उजागर करते हैं कि खाद्यान की प्रति व्यक्ति उपलब्धता दिनों दिन कम होती जा रही है। गरीबों के कुपोषण का एक कारण यह हो सकता है कि खाद्यान की कमी से इनके आमदनी और खाद्यान के मूल्यों में तालमेल न बैठना। हॉलाकि 1961–71 से लगायत 2001–11 तक जनसंख्या वृद्धि दर में तेजी से गिरावट आयी और खाद्यान का उत्पादन प्रतिवर्ष प्रतिहेक्टेयर बढ़ता ही गया फिर भी देश में खाद्यान की प्रतिव्यक्ति उपलब्धता कम क्यों है?

कारणों को तलाशने पर सच्चाई यही सामने आती है कि खेती करना धीरे–धीरे घाटे का सौदा बनता चला गया जिसके चलते बहुत सारे किसान खेती छोड़ने लगे। लगभग 75 लाख किसानों ने 1991–2011 के बीच खेती करना छोड़ दी। दूसरी तरफ उपजाऊ जमीनों को राष्ट्र के विकास के नाम पर अधिग्रहित करके कारपोरेट घरानों को देने से खेती के जमीनों के क्षेत्रफल में भी बेतहाशा कमी आयी है। जिसका प्रतिफल यह है कि देश की लगभग एक तिहाई आबादी भूख और कुपोषण की शिकार है। हालात यदि इसी तरह के बने रहे तो देश में गरीबी, भुखमरी और कुपोषण से मरने वालों की संख्या दिन प्रतिदिन तेजी से बढ़ती जाएगी। भारतीय मीडिया इन ज्वलंत मुद्दो पर मौन क्यों रहता है?जबकि इन मुद्दों को उसे सकारात्मक तथा प्रभावशाली ढंग से उठाकर अन्य मुद्दों की तरह देश के सामने लाना चाहिए ताकि गरीब, किसान और कुपोषित आबादी के प्रति सरकारों की जवाबदेही तय हो सके। यह कम आश्चर्यजनक बात नहीं है कि गरीबी दूर करने के नाम पर गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों को बाँटे गये चावल और निर्यातित चावल के प्रति कुन्तल मूल्यों का लेखा–जोखा देखने पर पता चलता है कि गरीबी रेखा के नीचे के लोगों को राशनी दुकानों से बेचे गये चावल का मूल्य निर्यातित चावल के मूल्य से अधिक है। मतलब साफ है कि सरकार की नजर में भारत का गरीब इंसान विदेशों के जानवरों के बराबर भी नहीं है। क्योंकि भारत से निर्यातित अनाज विदेशी खुद न खाकर अपने जानवरों को खिलाते हैं। अतः सरकार को कारगर कदम उठाकर कुपोषण को रोकने का यथाशीघ्र प्रयास करना चाहिए।

कुपोषण का मुख्य कारण कृषि योग्य जमीनों के क्षेत्रफल में कमी से उपजे प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति कम खाद्यान की उपलब्धता ही है। इसके बावजूद सरकारें जमीनों का अधिग्रहण लगातार करती जा रही हैं। ताजा उदाहरण झारखण्ड प्रदेश की राजधानी राँची के नगड़ी गाँव का है। यहां के आदिवासी किसानों ने अपनी उपजाऊ जमीन बचाने के लिए 150 दिनों तक सत्याग्रह करते रहे। धरना प्रदर्शन के साथ ही साथ न्यायालय तक का दरवाजा खटखटाए किन्तु उन्हें न्याय के बदले मिली लाठियां और जेल। दुनिया की सबसे बड़ी लोकतंत्रीय सरकार उनकी जमीन छिनने पर आमादा है। भूमि–अधिग्रहण कानून 1894 के विभिन्न धाराओं को हथियार बनाकर नगड़ी निवासी आदिवासियों का 227 एकड़ जमीन शिक्षण संस्थान बनाने के नाम पर लाठी तथा बन्दूक के बल पर झारखण्ड सरकार छीन लेना चाहती है। सरकार चाहती तो बन्जर परती पड़े जमीनों पर शिक्षण संस्थानों को बनवा सकती है किन्तु पूँजीपतियों तथा बड़े–बड़े लोगों को खुश करने के मकसद से आदिवासियों की आजीविका का संसाधन खेती के जमीन को हर हथकंडा लगाकर छीनने पर उतारू है। सरकारों द्वारा किसानों से जबरदस्ती जमीन छीनने की यह एक बानगी भर है। कारपोरेट

घरानों को फायदा पहुंचाने के उद्देश्य से पूरे देश में किसानों की अधिग्रहण की गयी उपजाऊ जमीनों की एक लम्बी फेहरिस्त है।

भारतीय लोकतंत्र में सत्ताधारी एवं विपक्षी नेताओं के सांठगांठ का खामियाजा किसान, गरीब, मजदूर और कुपोषण की शिकार एक तिहाई आबादी भुगतने को मजबूर है। इतनी बड़ी आबादी की समस्याओं को मीडिया के चैनलों द्वारा नजरअन्दाज करना क्या न्याय संगत है? अगर नहीं तो फिर भी ऐसा वे क्यों करते हैं?दरअसल ज्यादातर टीवी न्यूज चैनलों में रियलस्टेट, राजनेता और इनके रिश्तेदारों के प्रवेश करने से मीडिया के तथाकथित सम्पादक, पत्रकारों, कारपोरेट और उनके दलालों, राजनेताओं तथा नौकरशाहों का एक मजबूत गठजोड़ बन गया है जिनका उद्देश्य उद्योगपतियों के साथ मिलकर धन कमाना और एक दूसरे के जनविरोधी कारनामों को दबाना भर रहता है। हालात इतने बिगड़ गई हैं कि चैनल मालिक, सम्पादक तथा पत्रकार खबरों के व्यापारी बनकर धन उगाही में लिप्त हैं। पैसे वाले इन्हें खरीदकर जिन खबरों को बदलवाना चाहते हैं उसे बदलवा देते हैं या दबवाना चाहते हैं तो दबवा देते हैं। फर्जी स्टिंग आपरेशन करके किसी के भी जीवन को तहस–नहस करने की धमकी देकर धन की माँग करना अब इनकी आदत बन गई है। न्यूज चैनल अब इतने बेलगाम हो गए हैं कि इन पर लगाम लगाने की माँग लगातार बढ़ती जा रही है। ब्रॉडकास्ट एडिटर्स एसोसिएशन (बीइए), न्यूज ब्रॉडकास्टर्स एसोसिएशन (एनबीए) और एडिटर्स गिल्ड जैसे संगठन भी इनके कारनामों से चिन्तित हैं पर मजबूर हैं। क्योंकि सरकार द्वारा मीडिया नियमन के सवालों को नजरअन्दाज करने के कारण भारतीय मीडिया अब कारपोरेट घरानों की कठपुतली बन गई है। यही कारण है कि गरीबी, भूखमरी, कुपोषण, जमीन अधिग्रहण के विरोध में किसानों के प्रदर्शन तथा आन्दोलन सम्बन्धित खबरों को मीडिया या तो छिपाती है या दबा देती है। जब भी किसान जमीन अधिग्रहण के विरोध में खड़े होते हैं, धरना, प्रदर्शन या उग्र आन्दोलन करते हैं तब खानापूर्ति के नाम पर मीडिया के लोग एकाधबार खबर दिखला तो देंगे परन्तु ज्यादातर मामलों में चुप्पी साध लेते हैं। जबकि इन मुद्दों की सच्चाई को सही व सटीक तर्क के साथ प्रभावशाली ढंग से लोगों को दिखाना, बताना तथा समझाना इनकी नैतिक जिम्मेदारी है। यदि ये अपनी जिम्मेदारियों से भागेंगे तो आने वाले दिनों में आम जनता इनका भी विश्वास ठीक उसी तरह से नहीं करेगी जैसे कि राजनेताओं पर नहीं करती है। यदि मीडिया के लोग अपने–अपने स्वार्थ तथा लालच को छोड़कर और बेखौफ होकर गरीबी, कुपोषण, भुखमरी जबरदस्ती जमीन अधिग्रहण के खबरों को देश के सामने लाकर आम जनता को जगाते तो देश की तस्वीर ही कुछ और होती।

# किसानों के हक की अनदेखी कब तक करेगी सरकार

किसान और मजदूरों को दरकिनार करके उनके हाल पर मरने के लिए छोड़ देना अंग्रेजी शासन से लगायत आजतक बदस्तूर जारी है। किसानों द्वारा उस समय किए गए आन्दोलन और सत्याग्रह इस बात की गवाही देते हैं कि अपने हक के लिए किसान भारी सत्याग्रह करके कई बार ब्रितानी सरकार को झुकाया था। 1917–18 में भारी वर्षा के कारण इनकी फसले खराब हो गयी थीं और रूपये में चार आने से भी कम उपज हुई थी। उस समय जिस साल रूपये में छः आने से कम फसल होती थी उस साल की लगान अगले वर्ष के लगान के साथ वसूलने का नियम था। इसके बावजूद सरकार लगान वसूलने पर आमादा थी। गांधीजी ने एक सभा में किसानों को बताया कि लगान देने से इन्कार करने पर आपकी जायदाद जब्त हो जाएगी, क्या आप इसके लिए तैयार हैं? लोग चुपचाप बैठे रहे, किन्तु एक बुड्ढा किसान उठा और कहा कि हम सब कुछ बरदाश्त करेंगे और इसके बाद किसानों का सत्याग्रह शुरू हो गया। सरकार जायदाद और जमीनें जब्त करने लगी परन्तु दो माह बाद सरकार झुक गई और शर्त मान ली। इस सत्याग्रह में गुजरात के 600 गाँवों ने हिस्सा लिया था। पुनः 1923–24 में 94 गाँवों के किसानों ने सत्याग्रह किया क्योंकि उन पर ताजीरी टैक्स लगाया गया था। किसान सवेरे ही अपने अपने घरों में ताले लगाकर चले जाते थे जिससे पुलिस को कोई गवाह तक नहीं मिल पाता था। तत्कालीन नियमानुसार सूर्यास्त के बाद जायदाद कुर्क नहीं हो सकती थी। अन्त में सरकार ने मजबूर होकर लगाए गए टैक्स को वापस ले लिया। 1921–22 में बारदोली के किसानों ने सत्याग्रह शुरू किया। सरकार ने इससे चिढ़कर उस इलाके का बन्दोवस्त कराके 22 प्रतिशत लगान बढ़ा दिया। भूखे पेट सोने वाला मुसीबत का मारा बेचारा गरीब किसान 22 प्रतिशत लगान कहाँ से देता? किसानों ने लगान देने से इन्कार कर दिया। परन्तु दुर्भाग्यपूर्ण सच्चाई यह है कि अन्त में उस समय के नेताओं ने सरकार के साथ समझौता कर लिया। वास्तविकता यह है कि मध्यमवर्गीय और पूँजीपतियों के इशारों पर नाचने वाले नेताओं के बलबूते किसानों और मजदूरों के हक की लड़ाई कभी भी नहीं लड़ी जा सकती है। क्योंकि ये लोग, विशेषकर पूँजीपति, अपनी सम्पत्ति या मिल्कियत खतरे में डालने की हिम्मत नहीं कर सकते। 1920 में अहमदाबाद के मजदूरों के आन्दोलन के समय अपने प्रथम अनुभव के बाद महात्मा गान्धी ने कहा था, "हमें मजदूरों के साथ साँठ–गाँठ नहीं करनी चाहिए।

कारखानों के सर्वहारा वर्ग का राजनीतिक हितों के लिए इस्तेमाल खतरनाक है।'' (मई, 1931 के 'दि टाइम्स' से)। उन्होंने इस वर्ग को साथ लेने का जोखिम नहीं उठाया। इसी प्रकार 1922 के बारदोली–सत्याग्रह में उस समय के नेताओं ने किसानों के विद्रोह को जब देखा तो उनको भी खतरा महसूस हुआ। इसीलिए किसानों को आजादी की लड़ाई में अपने साथ लेना मुनासिब नहीं समझा। दरअसल में किसान और मजदूर अंग्रेजों की गुलामी से आजादी के साथ ही साथ यहाँ के सामन्तों तथा पूजीपतियों से भी छुटकारा चाहते थे। इसी तथ्य को भाँपकर तत्कालीन नेतागण यहाँ तक कि गान्धी जी भी किसानों और मजदूरों को आजादी की लड़ाई में अपने साथ नहीं रखना चाहते थे। यही कारण था कि हमारे नेता किसानों के आगे झुकने के बजाय अंग्रेजों के सामने घुटना टेकने में अपनी भलाई समझते थे और छोटी–छोटी समस्याओं को सुलझाने के लिए समझौता करते रहते थे। सम्पूर्ण आजादी, जैसा कि किसान व मजदूर चाहते थे, उन्हें इससे कोई लेना देना नहीं था। वे तो दबाव बनाकर बस सत्ता हस्तानान्तरण और भारतीय पूँजीपतियों के लिए हमेशा रियायतें हासिल करना चाहते थे। यही वजह है कि तबसे लगायत आजतक किसानों और मजदूरों के शोषण का सिलसिला बदस्तूर जारी है। मेहनतकश गरीब किसान व मजदूरों को सम्पूर्ण आजादी तो नहीं मिली जिसके चलते इनके श्रम का शोषण करके इनके द्वारा कमायी गयी दौलत को बिना हाथ पैर हिलाये आज भी अमीर वर्ग इनसे छीन लेता है और लखपति से करोड़पति तथा अरबपति बनता चला जाता है। दुर्भाग्य यह है कि इनकी लड़ाई लड़ने वाले सिपाहियों को फाँसी पर चढ़ा दिया गया और आज भी किसानों के हक की लड़ाई लड़ने के लिए उनके साथ जब कोई खड़ा होता है तो उन्हें भी सरकार तथा प्रशासन तंत्र द्वारा जेल में डालकर पुनः उसी कहानी को दोहराया जाता है। देश की सारी राजनैतिक पार्टियाँ अलग–अलग किसान सभा, समाजवादी किसान मंच, किसान मोर्चा आदि का गठन करके किसानों के हितों की लड़ाई लड़ने का दावा तो करती हैं लेकिन इनका वोट लेने हेतु थोड़े समय के लिए इनके साथ तो जरूर खड़ी होती हैं, फिर पूँजीपतियों के ही इशारों पर नीतियाँ बनाकर उन्हें फायदा पहुँचाने के अलावा आजतक इन राजनैतिक दलों द्वारा न तो किसान हितैषी नीतियाँ बनायी गई और न भविष्य में बनाने की इनसे उम्मीद की जा सकती है। क्योंकि ये भी अपने आपको पूँजीपतियों से अलग नहीं समझते बल्कि किसानों के साथ इनका व्यवहार ठीक वैसे ही होता जैसा कि पूँजीपति सोचता और करता है। यदि ऐसा नहीं होता तो ग्रामीण–क्षेत्रों की नुमाइन्दगी करने और रहने वाले सांसदों, विधायकों की संख्या सदन में अधिक होते हुए भी किसानों की दशा इतनी सोचनीय क्यों होती?

वैसे तो किसानों के साथ किये गए छलों का अंग्रेजी शासनकाल से अबतक का लम्बा इतिहास है। किन्तु उनके बारे में चर्चा न करके आइए वर्तमान समय में उनकी वास्तविक दशा कैसी है इस पर नजर डालें। खाद्यानी फसलों की उपज का लेखा–जोखा यह दर्शाता है कि 1954–55 से 2010–11 तक उपजों में लगातार वृद्धि करने के बाद भी किसान की हालत सुधरने के बजाय बिगड़ती ही जा रही है। 1954–55 के सापेक्ष 2010–11 में उनकी उपज में तीन गुनी वृद्धि हुई लेकिन इसके ठीक उलट उनकी दशा पहले की अपेक्षा आज तीस गुनी दयनीय हो गई है। सरकार व सरकारी तंत्र के साथ–साथ माननीय सांसद तक कारणों को तलाशने की जिम्मेदारी से या तो भागते है या अनाप–शनाप का बयान देकर वास्तविकता को छिपाने के साथ ही साथ हमेशा पूँजीपतियों के नफे–नुकसान का आकलन करने में लगे रहते हैं। इसीलिए तो बीमार उद्योग को बचाने के लिए विभिन्न प्रकार की सरकारी सहायता देने के लिए संसद में बैठकर कानून तो बनाते हैं परन्तु किसानों के फसलों का दैवी प्रकोप से नुकसान की भरपाई हेतु कोई भी कानून इनके द्वारा आजतक नहीं बनाया गया। इसके पीछे कारण क्या है?

तालिका : खाद्यानी फसलों के उपज का लेखा–जोखा (कि.ग्रा./हेक्टेयर)

| वर्ष | चावल | गेहूँ | मोटा अनाज | कुल योग | दाल | कुल खाद्यानी अनाज | वृद्धि (गुना) |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1954–55 | 820 | 803 | 520 | 664 | 500 | 631 | .. |
| 1964–65 | 1078 | 913 | 514 | 817 | 520 | 757 | 1.20 |
| 1974–75 | 1045 | 1338 | 606 | 907 | 455 | 824 | 1.31 |
| 1984–85 | 1417 | 1870 | 795 | 1285 | 526 | 1149 | 1.82 |
| 1994–95 | 1911 | 2559 | 929 | 1763 | 610 | 1546 | 2.45 |
| 2004–05 | 1984 | 2602 | 1153 | 1903 | 577 | 1652 | 2.62 |
| 2005–06 | 2102 | 2619 | 1172 | 1968 | 598 | 1715 | 2.78 |
| 2007–08 | 2202 | 2802 | 1431 | 2151 | 625 | 1860 | 2.95 |
| 2008–09 | 2178 | 2857 | 1459 | 2183 | 659 | 1909 | 3.03 |
| 2009–10 | 2130 | 2830 | 1222 | 2082 | 225 | 1798 | 2.85 |
| 2010–11 | 2240 | 2938 | 1528 | 2247 | 689 | 1921 | 3.05 |

स्रोत : कृषि मंत्रालय, भारत सरकार

एक और आकड़ा देखें। कुल खाद्यानी फसलों के खेती का रकबा, उत्पादन और उनमें हुई वृद्धि दर के आकड़ों के मुताबिक 2004–05 से 2005–06 तक खेती का रकबा 1.27 प्रतिशत बढ़ा तो फसलों का उत्पादन 5.13 प्रतिशत और 2009–10 से 2010–11 तक खेती के रकबे की वृद्धि 3.84 प्रतिशत के सापेक्ष में उत्पादन में वृद्धि 13.45 प्रतिशत हुई। 2006–07 से 2007–08 तक रकबे में 0.3 प्रतिशत वृद्धि (पिछले वर्षों की तुलना में कम वृद्धि) के बावजूद उत्पादन में 6.8 प्रतिशत वृद्धि हुई। जबकि 2007–08 के तुलना में 2008–09 में खेती का रकबा कम तो हुआ किन्तु खाद्यानी फसलों के उत्पादन में 1.86 प्रतिशत वृद्धि का आकलन किया गया। ये सारे आकड़े इस हकीकत की तरफ इशारा करते हैं कि खाद्यानी फसलों के उत्पादन में वृद्धि का यह सिलसिला किसानों के हाड़–तोड़ श्रम का प्रतिफल है क्योंकि किसानी के लिए समुचित मात्रा में पानी, खाद, बीज, बिजली आदि की व्यवस्था सरकार नहीं कर पाती है। वर्ष 2009–10 में खेती के रकबे में मामूली गिरावट के सापेक्ष फसलों के उत्पादन में गिरावट पहले की अपेक्षा 8.25 प्रतिशत से अधिक था। उत्पादन में इतनी अधिक गिरावट सूखाग्रस्त क्षेत्रों में सिंचाई के पानी की अनुपलब्धता के कारण हुई। यह तथ्य किसानों के प्रति सरकार की असंवेदनशीलता को जाहिर करता है।

तालिका : कुल खाद्यानी फसलों का रकबा, उत्पादन एवं उनमें वृद्धि का लेखा–जोखा

आधार वर्ष : 2004–05 मूल्य=100

| वर्ष | रकबा (मिलियन हेक्ट0) | उत्पादन (मिलियन टन) | वर्ष | | रकबे में वृद्धि (प्रतिशत में) | उत्पादन में वृद्धि (प्रतिशत में) |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | से | तक | | |
| 2004–05 | 120.08 | 198.36 | 2004–05 | 2005–06 | 1.27 | 5.18 |
| 2005–06 | 121.60 | 208.59 | 2005–06 | 2006–07 | 1.77 | 4.38 |
| 2006–07 | 123.70 | 217.28 | 2006–07 | 2007–08 | 0.30 | 6.80 |
| 2007–08 | 124.06 | 230.78 | 2007–08 | 2008–09 | –1.02 | 1.86 |
| 2008–09 | 122.83 | 234.47 | 2008–09 | 2009–10 | –1.43 | –8.25 |
| 2009–10 | 121.12 | 218.11 | 2009–10 | 2010–11 | 3.84 | 13.45 |
| 2010–11 | 125.73 | 244.78 | – | – | – | – |

सरकार खेती के लागत को कम करने का उपाय तो करती नहीं उल्टे उर्वरकों के मूल्य प्रतिवर्ष कुछ न कुछ बढ़ाती जाती है। फलस्वरूप बढ़ती कीमतों के कारण किसानों ने फास्फेटिक उर्वरकों के इस्तेमाल करने से मुँह मोड़ना शुरू कर दिया है। मँहगी उर्वरकों के चलते उत्तर प्रदेश में डीएपी, एनपीके एवं पोटाश की बिक्री सत्र 2012–13 में लगभग 20 प्रतिशत कम रही। हालाँकि यूरिया की खपत जरूर बढ़ी लेकिन इसका अधिक मात्रा में उपयोग किया जाना मिट्टी की सेहत के लिए अच्छा नहीं है। कृषि विभाग के आकड़ों से जाहिर होता है कि अकेले उत्तर प्रदेश में फास्फेटिक उर्वरकों की जितनी माँग होती है उतनी भारत सरकार कभी भी पूरा नहीं कर पाती। यही कारण है कि फास्फेटिक खादों के लिए उत्तर प्रदेश में ही नहीं बल्कि पूरे देश में मारामारी रहती है। किसानों की इस बेबसी को जानते हुए भी सरकार इसके समाधान हेतु कोई कारगर कदम क्यों नहीं उठाती?

तालिका : उर्वरकों की मूल्य वृद्धि एवं उनके वितरण लक्ष्य–पूर्ति का लेखा–जोखा (उ0प्र0 के परिप्रेक्ष्य में)

| खाद | फास्फेटिक खादों की मूल्य वृद्धि (रूपये में) | | वर्ष | लक्ष्य (मि टन) | पूर्ति (मि टन) |
|---|---|---|---|---|---|
| | अप्रैल 2010 | जनवरी 2013 | | | |
| डीएपी | 472 | 1205 | 2009–10 | 83.35 | 78.47 |
| एनपीके | 375 | 1180 | 2010–11 | 89.40 | 80.36 |
| पोटाश | 282 | 880 | 2011–12 | 86.92 | 77.66 |

कृषि एवं कृषि सम्बन्धित क्षेत्र के सकल पूँजी निर्माण (जीसीएफ) और सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का अनुपात 2004–05 में 13.5 प्रतिशत था जो 2010–11 में बढ़कर 20.1 प्रतिशत हो गया, जबकि राष्ट्रीय आय में खेती का योगदान लगातार कम हो रहा है। नौवीं पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय आय में खेती का योगदान 23 प्रतिशत के आस पास था और 2011–12 आते आते इसका योगदान मात्र 14 प्रतिशत तक सिमट गया। इसके साथ ही राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के साथ कदम मिलाकर चलने में भी खेती सक्षम नहीं है। नौवीं पंचवर्षीय योजना में कृषि की वृद्धि दर 2.5 प्रतिशत थी जो राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर 5.7 प्रतिशत से कम है। वर्ष 2011–12 में इनमें वृद्धि क्रमशः 2.8 प्रतिशत और 6.5 प्रतिशत आँकी गयी। ये सारे आकड़े क्या इस हकीकत के तरफ इशारा नहीं करते कि किसानों की दशा सुधारने के लिए सरकार के पास न

तो समय है और न तो कोई उपाय। यह भी हो सकता है कि इन आकड़ों का विश्लेषण करना और उचित उपाय ढूढ़ना माननीयों के बुद्धि के समझ से परे की बात हो। उदारीकरण के बाद से ही कृषि व किसानों की सरकार लगातार उपेक्षा कर रही है। नौवीं पंचवर्षीय योजना में कृषि के लिए जीडीपी का 45 प्रतिशत हिस्सा आवंटित किया गया परन्तु मिला उसे इससे कम। इसी प्रकार दसवीं पंचवर्षीय योजना में आवंटित था 39 प्रतिशत लेकिन 38 प्रतिशत पर ही कृषि क्षेत्र को सन्तोष करना पड़ा।

तालिका : कृषि का जीसीएफ एवं जीडीपी, राष्ट्रीय आय में कृषि का योगदान, कृषि और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में वृद्धि का लेखा–जोखा

| वर्ष | कृषि एवं कृषि सम्बन्धित क्षेत्र | | | वर्ष | राष्ट्रीय आय में खेती का योगदान (प्रतिशत में) | कृषि की वृद्धि दर (प्रतिशत में) | राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की वृद्धिदर (प्रतिशत में) |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | सकल पूंजी निर्माण (जीसीएफ) रू. करोड़ में | सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) रू. करोड़ में | जीसीएफ / जीडीपी | | | | |
| 2004–05 | 76096 | 565426 | 13.5 | नौवीं पंचवर्षीय योजना | 23.4 | 2.5 | 5.7 |
| 2005–06 | 86604 | 594487 | 14.6 | दसवीं पंचवर्षीय योजना | 19.0 | 2.4 | 7.6 |
| 2006–07 | 92057 | 619190 | 14.9 | ग्यारहवींपंचवर्षीय योजना | 15.2 | 3.3 | 7.9 |
| 2007–08 | 105741 | 655080 | 16.1 | 2007–08 | 16.8 | 5.8 | 9.3 |
| 2008–09 | 127127 | 655689 | 19.4 | 2008–09 | 15.8 | 0.1 | 6.7 |
| 2009–10 | 131139 | 662509 | 19.8 | 2009–10 | 14.7 | 1.0 | 8.4 |
| 2010–11 | 142254 | 709103 | 20.1 | 2010–11 | 14.5 | 7.0 | 8.4 |
| – | – | – | – | 2011–12 | 14.0 | 2.8 | 6.5 |

स्रोत : 1. सेन्ट्रल स्टैटिस्टिक्स आफिस, नई दिल्ली,
2. कृषि मंत्रालय, भारत सरकार

वास्तव में कृषि के आवंटित धन में से कटौती करके सरकार इस धन को गैर कृषि–क्षेत्र पर या यों कहें कि पूँजीपतियों और कारपोरेट घरानों के विकास पर खर्च करती है जिसके चलते कृषि–क्षेत्र पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। यही नहीं बल्कि केन्द्र सरकार की विभिन्न योजनाओं में मिलने वाले धन का प्रदेशीय सरकारों द्वारा इस्तेमाल करने में कोताही बरतने से भी कृषि–क्षेत्र का विकास बाधित होता है, जिसका खामियाजा किसानों को भुगतना पड़ता है। राष्ट्रीय कृषि विकास योजना के तहत मिला धन विकास कार्यों की वित्तीय स्वीकृत मिलने में देरी होने से पूरा खर्च नहीं हो पाता फलस्वरूप किसानों को पूरा बजटीय लाभ नहीं पहुँच पाता। आखिर इसमें किसानों की क्या गलती है? असलियत तो यह है कि दूसरों की गलती की सजा किसानों को भुगतनी पड़ती है। 2010–11 के सरकारी आकड़े बताते हैं कि ग्रामीण विकास मंत्रालय ने 71853 करोड़ रूपये ग्रामीण विकास की योजनाओं पर अनुदान के माध्यम से खर्च किये। जबकि कृषि व सहकारिता पर इस मंत्रालय द्वारा मात्र 13535

करोड़ रूपये अर्थात ग्रामीण विकास पर खर्च की गई धनराशि का छठवाँ भाग ही कृषि पर खर्च किया गया। क्या कृषि क्षेत्र के विकास के बिना ही ग्रामीण विकास सम्भव है? शायद नहीं। हकीकत यह है कि ग्रामीण विकास की योजनाओं के जरिये अनुदान बाँटकर सरकार ग्रामीण मतदाताओं को बहला–फुसलाकर अपने राजनैतिक धरातल को अधिकाधिक मजबूत करना चाहती है। इसके पीछे उनकी मंशा किसानों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने की नहीं रहती। पिछले वित्तीय वर्ष 2011–12 में मनरेगा, ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन, मिड डे मील, आगनबाड़ी जैसी स्कीमों पर केन्द्र सरकार द्वारा तीन लाख करोड़ रूपये खर्च किया गया। विडम्बना यह है कि धन की कमी बताकर सरकार कृषि क्षेत्र के विकास पर नाम मात्र ही धन खर्च करती है जिसके चलते कृषि–प्रधान देश भारत के किसान भारी कर्ज, मौसम की मार और तकनीकी संसाधनों की कमी के कारण खेती छोड़ने और आत्महत्या करने को मजबूर हैं। असल में अनुदानों के रूप में दी गई धनराशि को ट्रस्ट या एनजीओ के माध्यम से खर्च किया जाता है और सरकार के पास इस खर्चे को सत्यापित कराने का एक भी भरोसामंद तरीका नहीं है। यही वजह है कि अनुदानों के रूप में बाटे गये धन का ज्यादातर हिस्सा एक उपयोगिता सर्टिफिकेट देकर लूट लिया जाता है। सरकार चाहती तो अनुदानों में लुटायी गयी धनराशि को कृषि क्षेत्र के विकास पर लगाकर किसानों की दशा में एक हद तक सुधार कर सकती है। अन्य बहुत सारे सरकारी तथा गैरसरकारी आकड़े इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि गुलामी के दौर से आजतक किसानों को उनका उचित हक नहीं मिला। स्थिति आज इतनी बिगड़ चुकी है कि भारत में एक किसान 25 रूपये प्रतिदिन तभी कमा पाएगा जब उसके पास कम से कम 1.16 हेक्टेयर जमीन हो और एक साल में गेहूँ–धान की अच्छी उपज हुई हो। निचोड़ में यही कहना उचित होगा कि किसानों के साथ न्याय तभी होगा जब उनकी आय में वृद्धि होगी। इसके लिए यदि सरकार चाहे तो अविलम्ब निम्न कदम उठाकर किसानों के साथ न्याय कर सकती है :

1. खेती की लागत कम करके किसानों की आय बढ़ाने के लिय उपाय करना।
2. अधिक से अधिक धन लगाकर कृषि विकास दर को बढ़ाना।
3. कृषि के उपज पर आधारित उद्योगों को गाँवों में लगाकर ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन करना। और
4. किसानों को उनकी उपज का लाभकारी मूल्य मिल सके इस हेतु आवश्यक ढाँचागत निर्माण एवं बदलाव को सुनिश्चित करना।

अन्त में यदि किसानों और कृषि–क्षेत्र के विकास के लिए उचित कदम नहीं उठाया गया तो वह दिन दूर नहीं होगा जब देश के हर नागरिक को आर्थिक समृद्धि के बावजूद अन्न की कमी के कारण भूखे पेट सोना पड़ेगा।

# खाद्य सुरक्षा और किसान

एक ओर सरकार कानून बनाकर सभी के लिए खाद्य–सुरक्षा–गारंटी देने की बात कर रही है, दूसरी तरफ अन्नदाता किसानों की स्थिति दिनोदिन भयावह होती जा रही है। सरकार इस पर ध्यान देने के बजाय किसानों को भूमिहीन बनाकर इन्हें पूँजीपतियों के हाथों का खिलौना बनाती जा रही है। देश के किसानों की तंगहाली तथा बदहाली किसी से छिपा नहीं है। उनकी दीन दशा सुधरना तो दूर प्रतिदिन और दयनीय होती जा रही है। इनकी स्थिति बेहतर बनाने हेतु सरकार द्वारा कोई सकारात्मक पहल या उपाय आजतक नहीं किया गया। हाँलाकि यह सिलसिला अंग्रेजी शासन से लगायत आजतक बदस्तूर जारी है। आखिर किसान करे तो क्या करे? खाली पेट हाड़–तोड़ मेहनत करने के बाद अब किसानों को उनके फसलों की बिक्री से इतना नहीं मिल पाता है जिससे वह अपने परिवार का पेट भर सके, बच्चों को अच्छी तालीम दिलवा सके, लड़कियों की शादी कर सके और परिवार के बीमार सदस्य का यथोचित इलाज करा सके। उपज बढ़ाने के लिए (सरकार की मन्शा के मुताबिक) धन की कमी के कारण खाद, बिजली, पानी व बीज आदि के लिए उसे सरकारी व गैर सरकारी बैंकों से कर्ज लेना पड़ता है। कर्ज मिल जाये इसके लिए भी उसे बैंक व प्रशासनिक अधिकारियों के सामने भिखारियों की तरह गिड़गिड़ाना पड़ता है। आखिर उनके हिस्से में ही ये सारी मुसीबतें क्यों?2011–12 के सरकारी आकड़ों के मुताबिक खेती से उत्पन्न फसलों से सीमान्त, लघु, सेमी–मझोले यहां तक कि मझोले व बड़े किसानों को पूरे वर्ष श्रम के बदले दीनता के सिवाय और कुछ भी नहीं मिल पाता। फसलों की बिक्री से इन्हें क्रमशः 43144 रूपये, 117708 रूपये, 235382 रूपये, 549228 रूपये और 784610 रूपये ही मिला। इस प्राप्त धन में से लागत–मूल्य और किसान परिवार के मात्र एक सदस्य के खेती में लगे श्रम की कीमत को घटाने के बाद उसके हाथ में अन्न का एक दाना भी खाने के लिए नहीं बचता है। जबकि कम से कम एक सदस्य धान व गेहूं की खेती में 12 माह तक लगातार श्रम करता रहता है। ऐसी स्थिति में किसान अपनी फरियाद कहां और किससे करे?क्योंकि सरकार और सरकारी तंत्र तो अब कारपोरेट घरानों के विकास को ही राष्ट्र का विकास मानती है। इन्हें देश के 70 प्रतिशत किसानों की गरीबी, भूखमरी तथा दीनता से अब कुछ लेना–देना नहीं है।

के वी थामस, खाद्यमंत्री भारत सरकार लोकसभा में एक प्रश्न के जवाब में एनएसएसओ द्वारा जारी रिपोर्ट का हवाला देते हुए बताए कि 1993–94 में गावों के 94.5 प्रतिशत परिवार और वर्ष 2009–10 में 98.9 प्रतिशत परिवारों को दो जून की रोटी मयस्सर थी। 1993–94 में शहरों में ऐसे परिवारों की संख्या 98.1 प्रतिशत थी जो अब 99.6 प्रतिशत हो गयी है। अर्थात सरकार के अनुसार आज गावों में मात्र 1.1 प्रतिशत और शहरों में 0.4 प्रतिशत परिवार ही भूखे पेट सोते हैं। जबकि दूसरी तरफ सरकार स्वयं देश की 65 प्रतिशत आबादी को खाद्य सुरक्षा मुहैया कराने की बात करते हुए खाद्य सुरक्षा विधेयक

को संसद के दोनों सदनों में पास कराना चाहती है। सरकार के अनुसार खाद्य सुरक्षा गारंटी कानून बनाने से करीब 80 करोड़ लोगों को फायदा होगा और लाभार्थियों को 3 रू. किलो चावल, 2 रू. किलो गेहूँ तथा 1 रू. किलो मोटा अनाज मिलेगा। क्या ये दोनों विरोधाभासी आकड़े सरकार की पोल खोलने के लिए काफी नहीं है। यदि देश के गाँवों में 1.1 प्रतिशत और शहरों में 0.4 प्रतिशत परिवार ही भूखे पेट सोते हैं तो खाद्य सुरक्षा गारंटी कानून बनाने की बाध्यता सरकार के समक्ष क्यों?वास्तविकता तो यह है कि 70 प्रतिशत किसान जो अन्न उपजाकर देश के लोगों को खाने के लिए देता है इनमें से 66 प्रतिशत किसान ऐसे हैं जिन्हें भूखे पेट रहना पड़ता है। इसी सच्चाई को सरकार आंकड़ों के बाजीगरी के माध्यम से छिपाने के फिराक में हमेशा लगी रहती है। वह चाहती है कि यह सच छिपा रहे ताकि जमीन अधिग्रहण और कारपोरेट घरानों के विकास के राह में कोई बाधा उत्पन्न न हो।

वर्ष 2011–12 के सरकारी आँकड़ों का विश्लेषण करने पर किसानों की वास्तविक तस्वीर जो देखने को मिलती है वह बेहद चौकाने वाली है। सीमान्त किसान, लघु किसान और सेमी मझोला किसान गेहूँ और धान की खेती से अपने तथा अपने परिवार के सदस्यों के लिए दो जून की रोटी की व्यवस्था नहीं कर पाता है। सीमान्त किसान को अपनी पूरी उपज बेचने के उपरान्त 43144 रूपये मिलते हैं। लागत–मूल्य और उसके श्रम की कीमत घटाने के बाद अन्त में उसे 10681 रूपये का घाटा होता है। जबकि लघु किसान को 20658 रूपये और सेमी मझोला किसान को 70082 रूपये की वार्षिक आय होती है। सरकार के अनुसार दोनों तरह के किसानों के परिवार छः सदस्यीय होते हैं। परिवार के प्रत्येक सदस्य को रोटी मिल सके इसके लिए लघु किसान को 87342 रूपये तथा सेमी मझोला किसान को 37918 रूपये की और आवश्यकता होगी जिसकी व्यवस्था किसान अब कहाँ से करेंगे। ऐसी दशा में भूखे पेट सोने के अलावा और कोई दूसरा रास्ता इन्हें नजर नहीं आता। सरकार चाहे जितने भी विकास के दावे पेश करे सीमान्त किसान से लगायत सेमी मझोले किसानों की यही जमीनी  हकीकत है। दूसरे शब्दों में ये तथ्यगत आँकड़े  सरकार के विकास–नीतियों के खोखलेपन को साबित करता है। सीमान्त किसान तो वर्ष भर श्रम करके घाटा उठाता है, फिर वह अपने परिवार का पेट कैसे भरेगा? क्या देश के माननीय जनप्रतिनिधियों के पास इसका कोई माकूल जवाब है?आखिरकार किसानों के साथ ये लोग कब तक छल करते रहेंगे। रही मझोले और बड़े किसानों की बात तो इनको दो जून की रोटी के बाद क्रमशः 112928 रूपये व 174810 रूपये शेष बचते हैं। महंगाई के इस दौर में इतनी कम धनराशि से बच्चों को अच्छी तालीम देना, किसी सदस्य के बीमार होने पर उसका इलाज कराना और लड़की की शादी कर देना रेत में दूब उगाने जैसा कार्य होगा। उच्च शिक्षा महंगी होने के कारण मझोले तथा बड़े किसानों को भी अपने बच्चों को तकनीकी, मेडिकल शिक्षा, बी.ए., एम.ए. यहां तक कि बी.एड. तथा बीटीसी में दाखिला कराना सिर्फ एक दिवास्वप्न बनकर रह जाएगा। परिवार का कोई

सदस्य किसी असाध्य बीमारी जैसे कैंसर, लीवर या किडनी में खराबी आदि से ग्रसित हो गया हो तो इलाज के अभाव में वह बिना मौत ही मर जाएगा। यही सरकार व सरकारी तंत्र के विकास के दावे की असली तस्वीर है।

तालिका :

जोतों का आकार, गेहूँ तथा चावल के उत्पादन–मूल्य, लागत–मूल्य व खेती से आय का लेखा–जोखा (वर्ष 2011–12)

गेहूँ की उत्पादकता : 3026 किग्रा / हेक्टेयर, गेहूँ का समर्थन–मूल्य : रू0 1285 / – प्रति कुन्तल

चावल की उत्पादकता : 2346 किग्रा / हेक्टेयर, चावल का समर्थन–मूल्य : रू. 1687 / – प्रतिकुन्तल

| | जोतों का आकार | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| फसल | सीमान्त किसान (1 हेक्ट. से नीचे) औसत क्षेत्रफल 0. 55 हेक्टेयर | लघु किसान (1 हेक्ट.– 1.99 हे.) औसत क्षेत्रफल 1. 50 हेक्टेयर | सेमी मझोले किसान (2 हेक्ट–3.99 हेक्ट.) औसत क्षेत्रफल 3 हेक्टेयर | मझोले किसान (4 हेक्ट.–9.99 हेक्ट.) औसत क्षेत्रफल 7 हेक्टयर | बड़े किसान (10 हेक्ट. से उपर) औसत क्षेत्रफल 10 हेक्टेयर से उपर |
| **गेहूँ** औसत उत्पादन (कुन्तल में) | 16.64 | 45.39 | 90.78 | 211.82 | 302.60 से उपर |
| उत्पादन–मूल्य (रू0 में) | 21382 | 58326 | 116652 | 272188 | 388840 से उपर |
| लागत व किसान के श्रम का मूल्य (रू0 में) | 23860 | 40200 | 66000 | 134800 | 186400 से उपर |
| **चावल** औसत उत्पादन (कुन्तल में) | 12.90 | 35.20 | 70.38 | 164.22 | 234.60 से उपर |
| उत्पादन–मूल्य (रू0 में) | 21762 | 59382 | 118730 | 277040 | 395770 से उपर |
| लागत व किसान के श्रम का मूल्य (रू0 में) | 29965 | 56850 | 99300 | 184500 | 297400 से उपर |
| **गेहूँ व चावल** का उत्पादन–मूल्य (रू0 में) | 43144 | 117708 | 235382 | 549228 | 784610 से उपर |
| **गेहूँ व चावल** लागत मूल्य (रू0 में) | 53825 | 97050 | 165300 | 319300 | 483800 से उपर |
| **गेहूँ व चावल** से आय / घाटा (रू0 में) | –10681 | 20658 | 70082 | 229928 | 300810 से उपर |
| परिवार में सदस्यों की संख्या | 5 | 6 | 6 | 6.5 | 7 |
| खाने पर मासिक खर्च / सदस्य (रू0 में) | 1500 | 1500 | 1500 | 1500 | 1500 |
| परिवार के खाने पर वार्षिक व्यय (रू0 में) | 90000 | 108000 | 108000 | 117000 | 126000 |
| किसान की दशा / शुद्ध बचत (रू0 में) | घाटे में, भूखे रहने पर विवश | 87342 भोजन हेतु धन की आवश्यकता भूखे पेट रहता है। | 37918 भोजन हेतु धन की आवश्यकता भूखे पेट सेता है। | 11298 — | 174810 — |

वर्ष 1976–77 में सीमान्त किसानों की संख्या 54.5 प्रतिशत थी जो 2006–07 में बढ़कर

61.58 प्रतिशत हो गयी। इसी अवधि में लघु किसानों की संख्या भी पहले से 0.73 प्रतिशत और बढ़ गई। इसके ठीक उलट सेमी मझोले, मझोले और बड़े किसानों की संख्या क्रमशः 14 प्रतिशत से घटकर 12.34 प्रतिशत, 10.1 प्रतिशत से घटकर 6.14 प्रतिशत और 3.0 प्रतिशत से घटकर 1.21 प्रतिशत तक आ पहुंची। ये सारे आंकड़े इस तथ्य को सत्यापित करते हैं कि समय के साथ–साथ बड़े किसान मझोले किसान में, मझोला किसान सेमी मझोला में, सेमी मझोला किसान लघु किसान में, लघु किसान सीमान्त किसान में और सीमान्त किसान मजदूर किसान में बदलता जा रहा है। इसके साथ ही साथ मझोले व बड़े किसानों का रकबा भी पहले से घटता जा रहा है। ऐसा लगता है कि वह दिन अब दूर नहीं है जब देश के सारे किसान मजदूर किसान बन जाएगें। उस दिन का इन्तजार करने के पहले ही सरकार द्वारा नित नये कानूनों के जरिये किसानों की जमीनों को अधिग्रहित करके उन्हें सीमान्त किसान तथा मजदूर किसान में बदलने की पक्की तैयारी कर ली गई है। अखबारी खबरों के मुताबिक पाँच एकड़ अर्थात 2 हेक्टेयर वाले किसान अब जमींदार माने जाएंगे।

तालिका : पूरे देश में हर वर्ग के किसानों की जोतें

| जोतों का आकार | 1976–77 में | | 2006–07 में | |
|---|---|---|---|---|
| | संख्या (% में) | जमीन का रकबा (% में) | संख्या (% में) | जमीन का रकबा (% में) |
| सीमान्त किसान (1 हेक्टे. से नीचे के किसान) | 54.5 | 10.7 | 61.58 | 17.22 |
| लघु किसान (1 हेक्टे. से 2 हेक्टे. तक के किसान) | 18.0 | 12.8 | 18.73 | 18.81 |
| सेमी मझोला किसान (2 हेक्टे. से 4 हेक्टे. तक के किसान) | 14.0 | 19.8 | 12.34 | 23.85 |
| मझोला किसान (4 हेक्टे. से 10 हेक्टे. तक के किसान) | 10.1 | 30.4 | 6.14 | 25.34 |
| बड़े किसान (10 हेक्टे. से उपर के किसान) | 3.0 | 26.5 | 1.21 | 14.78 |

अतः सरकार के हिसाब से लघु किसान भी जब जमींदार कहलाएगा। सरकार यह मानती है कि वर्ष 1972 में भूमि सुधार के नाम पर लैण्ड सीलिंग अब बेमानी हो गया है और जमीदारी प्रथा समाप्त करने के लिए जो भी प्रयास किए गए वह उतना कारगर साबित नहीं हुए। इस कानून के लागू होते ही सेमी मझोले किसान से लगायत बड़े किसान तक लघु किसान की श्रेणी में आ जाएगें। फलस्वरूप किसान औरों का पेट भरते हुए अपने भूखे पेट सोने के लिए विवश हो जाएगें। क्या इस देश में किसानों को

विकास करने का अधिकार नहीं है? जबकि संविधान में भारत के हर नागरिक को समान विकास के लिए समान अवसर प्रदान करने की बात कही गयी है। क्या विकास करने का मौलिक अधिकार सिर्फ व सिर्फ उद्योगपतियों और कारपोरेट घरानों के लिए है? देश के माननीयों को 84 करोड़ से अधिक किसान संसद में क्या इसलिए चुनकर भेजते हैं कि वे मात्र कारपोरेट घरानों के विकास के लिए ही नीतियाँ बनाए?इन प्रश्नों पर अब गम्भीरता पूर्वक विचार करने का समय आ गया है। यदि इन प्रश्नों को दरकिनार किया गया तो देश से किसानों का नामोंनिशा मिटना तय है।

कुछ तथाकथित बुद्धिजीवी इन भूखे किसानों को दर किनार करते हुए देश से गरीबी मिटाने के लिए ऐसा माहौल तैयार करने की वकालत करते हैं जिससे उद्योग और सेवा क्षेत्र में रोजगार के नये अवसरों का सृजन हो सके। और इन अवसरों का लाभ उठाकर कम आमदनी वाले कृषि–क्षेत्र के कार्य–क्षेत्र को छोड़कर लोग शहरों में ज्यादा आमदनी वाले रोजगार हासिल कर सके। इनके अनुसार जापान, दक्षिण कोरिया, ताइवान, चीन आदि सारे देश सड़क, बन्दरगाह और एयरपोर्ट में निवेश करके, नयी टाउनशिप का निर्माण करके तथा शिक्षा और कौशल–विकास क्षेत्रों में आधारभूत संरचनाओं का विस्तार करके ही गरीबी से निजात पा सके। कारपोरेट–परस्त सोच रखने वाले ऐसे बुद्धिजीवी शायद इस हकीकत को भूल जाते हैं कि जिस दिन ये भूखे अधनंगे गरीब किसान खेती करना छोड़ देंगे उस दिन 66 प्रतिशत किसानों के साथ ही साथ देश की शेष आबादी क्या ज्यादा आमदनी वाले रोजगारों से अन्न पैदा करके अपना पेट भरेगी?शायद नहीं। ज्यादा आमदनी होते हुए भी इन्हें किसानों की तरह भूखा ही रहना पड़ेगा। यही जमीनी हकीकत है।

एक हकीकत यह भी है कि बाजारवादी अर्थव्यवस्था और आर्थिक उदारीकरण की नीति के तहत विकास के पश्चिमी देशों के माडल को अपनाकर किसानों की उपजाऊ जमीन छीनकर कारपोरेटों और पूंजीपतियों को एक्सप्रेसवे, विशेष आर्थिक क्षेत्र (सेज), बांधों, विद्युत परियोजनाओं, औद्योगिक कोरीडोर, परमाणु उर्जा संयत्र, औद्योगिक इकाइयां आदि के नाम पर पिछले एक दशक में कृषि योग्य 80 लाख हेक्टेयर जमीन देने से अब देश में कुल 11.7 करोड़ हेक्टेयर जमीन कृषि कार्य के लिए शेष बची है। खेती की जमीन तेजी से घटने के कारण आज गावों के 41.6 प्रतिशत परिवार भूमिहीन है। इसके बावजूद सरकार द्वारा प्रस्तावित भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास एवं पूर्नस्थापना अधिनियम

2011 के माध्यम से निजी कम्पनियों, उद्योगपतियों एवं बिल्डरों को सीधे जमीन खरीदने का अधिकार देकर किसानों को भूमिहीन बनाकर उन्हें विकास से वंचित करने की साजिश बड़ी चालाकी से की जा रही है। यही कारण है कि साल–दर–साल भूमिहीनों के साथ ही साथ गांवों में सीमान्त किसानों की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है जिसके चलते भूखमरी और कुपोषण से ग्रसित जनसंख्या घटने के बजाय बढ़ती जा रही है। अतः ग्रामीण भारत के किसानों और कृषि क्षेत्र के विकास के बिना खाद्य सुरक्षा की गारंटी देना बेमानी होगा।

# भूमि अधिग्रहण के विरूद्ध संघर्षों को कुचलना देश हित में नहीं है

शुरूआती दौर में भारतवासियों का जमीन के प्रति बड़ा व्यापक दृष्टिकोण था। जमीन सारे समाज की मिल्कियत समझी जाती थी। बाद में चलकर यह लोगों की निजी मिल्कियत बन गई। परन्तु इस दौरान भी समाज के सभी लोगों को जंगलों, तालाबों, चरागाहों एवं अन्य सामूहिक जमीनों का बिना रोक–टोक के उपयोग करने की पूरी आजादी थी। राजा–रजवाड़े के जमाने में जमीनों का मालिकाना हक किसानों के पास था। उस जमाने में भी सार्वजनिक जमीनों का उपयोग करने के लिए मनाही किसी को नहीं थी। वर्ष 1824 में सबसे पहले ब्रिटिश हुक्मरानों द्वारा बंगाल बन्दोबस्त के नाम पर निजी जमीन/सम्पत्ति को सार्वजनिक उपयोग जैसे सड़कों, नहरों, रेलवे आदि के निर्माण के लिए अधिग्रहण करना शुरू किया। 1857 ई0 के पहले जो भी कानून इस संदर्भ में बनाए गये थे उसे इसी साल ब्रितानी हुकूमत के अधीन वाले सभी जगहों पर लागू कर दिया गया। वर्ष 1870 में मुआवजे के बारे में कानून बनाते हुए उस पर विवाद होने की दशा में जमीन मालिकों को मुकदमा दायर करने का कानून में प्राविधान भी कर दिया गया। बाद के वर्षों में अंग्रेज हुक्मरान भारतीय वन अधिनियम 1865, भारतीय वन अधिनियम 1878, भारतीय वन नीति 1894, भारतीय वन अधिनियम 1927 आदि अपने फायदे के अनुसार समय–समय पर संशोधित तथा परिवर्तित करके बनाते रहे। अंग्रेजों के जमाने में बनाये गए भूमि–अधिग्रहण कानून के जरिये किसानों की निजी जमीन तथा सामूहिक हित की जमीनों को तत्कालीन सरकारें 1894 से आज तक जनहित एवं राष्ट्र के विकास के नाम पर विभिन्न सरकारी तथा निजी योजनाओं और परियोजनाओं के लिए अधिग्रहीत करती रहीं। 1947 में आजादी मिलने के बाद भी भूमि–अधिग्रहण कानून 1894 में बिना कोई बदलाव किए ही यथावत जमीनों के अधिग्रहण में लागू किया जाता रहा। 1947 के बाद इसी कानून के तहत बाधों, संयंत्रों, खदानों, नहरों, आदि के लिए अधिकाधिक जमीनों का अधिग्रहण हुआ। फलस्वरूप 1997 तक अनुमानतः 5 करोड़ लोगों को विस्थापित होना पड़ा। प्रारम्भिक दौर में भले

ही अधिग्रहीत की गई जमीनों का उपयोग सार्वजनिक क्षेत्रों और सरकारी परियोजनाओं के लिये किया गया, किन्तु बाद में इसी कानून के सहारे निजी उद्योगों के उपयोग के लिए भी जमीनें हड़पी जाने लगीं। सर्वोच्च न्यायालय ने 1962 में आर. एल. अरोरा बनाम उ.प्र. राज्य के मुकदमें में फैसला दिया कि निजी उद्योग के लिए अधिग्रहीत भूमि को सार्वजनिक उद्देश्य के दायरे में नहीं रखा जा सकता है। इसी के बाद नेहरू के शासनकाल में भूमि अधिग्रहण कानून (संशोधन) अधिनियम 1962 पारित किया गया जिसके तहत निजी कम्पनियाँ जो सार्वजनिक उद्देश्य हेतु उत्पादन करेंगी उनके लिये भी भूमि अधिग्रहण करने की छूट मिल गई। पुनः 1984 में इस कानून में संशोधन करके जमीन मालिकों को मुआवजे में सहूलियत देने के साथ ही साथ जमीन अधिग्रहण का अधिकार अब सार्वजनिक निगमों को भी दे दिया गया। इस प्रकार अंग्रेजों के जमाने से लगायत आज तक भूमि–अधिग्रहण कानून बनाना तथा सत्ताधारी व विपक्षी दलों के मिली भगत से आर्थिक रूप से सम्पन्न वर्गों के पक्ष में समय समय पर संशोधन करके उन्हें बेहिसाब कमाई करने के लिए जमीन दी जाती रही। अब तो देशी/विदेशी उद्योगपति सेज अधिनियम 2005 के प्रावधानों के अनुसार सत्तर प्रतिशत भूमि जहाँ पर भी ढूढ़ लेगे वहीं पर सरकार तीस प्रतिशत जमीन अधिग्रहीत करके उन्हें देगी। इसी कानून को आधार बनाकर सरकार विशेष आर्थिक क्षेत्र (सेज) के विकास के नाम पर किसानों से लाखों हेक्टेयर जमीन छीनकर बड़ी बड़ी कम्पनियों के मालिकों और पूँजीपतियों को बाँटने लगी है। जिसके फलस्वरूप किसान, आदिवासी भूमिहीन होकर, उजड़ते रहे तथा विस्थापित होने लगे और उनके तथा उनके आगे आने वाली पीढ़ियों के सामने रोजी–रोटी की समस्या मुँह बाये खड़ी होने लगी। अकेले रिलायंस कम्पनी देश के विभिन्न जगहों पर दस हजार से बीस हजार हेक्टेयर भूमि पर विशेष आर्थिक क्षेत्र बनाने के लिए महंगी जमीनों को औने–पौने दामों पर किसानों से हथिया रही है।

अब राज्य सरकारें भी संविधान के अनुच्छेद 246 का प्रयोग करके किसानों तथा ग्रामसभाओं की कीमती जमीन कम्पनियों को सौपने का हर सम्भव प्रयास करते हुए गरीब ग्रामीण तथा किसानों का मालिकाना हक छीन रही हैं। मध्य प्रदेश सरकार

2008–09 में नयी नीति घोषित करते हुए लाखों हेक्टेयर भूमि कम्पनियों तथा पूँजीपतियों को प्लांटेशन के नाम पर मामूली शुल्क लेकर बाँटने को तैयार बैठी है। यह कितनी विडम्बना की बात है कि जिस इलाके में नर्मदा पर बाँध बनाये जाने के कारण वहाँ के लाखों विस्थापितों को बसाने के लिए सरकार के पास भूमि उपलब्ध नहीं है, किन्तु इसी इलाके में जट्रोफा लगाने के लिए सरकार के पास तीन लाख हेक्टेयर जमीन एक कम्पनी को देने को देने के लिए है। ऐसे ही अन्य प्रदेशों की सरकारें नयी–नयी नीतियाँ बनाकर किसानों तथा ग्रमीणों की जमीन हड़पकर कम्पनियों और कारपोरेट घरानों के हवाले करती जा रही हैं। जब ये किसान, ग्रामीण व आदिवासी संगठित होकर विरोध करते हैं तब चाहे जो भी सरकार हो इनको नाना प्रकार से प्रताड़ित करती है और झूठे मुकदमें कायम करके जेल में डाल देती है। सरकार बदलने पर किसानों के प्रति सरकारों का रवैया क्यों नहीं बदलता है?इसके पीछे मात्र एक ही कारण है कि सरकार चाहे जिस भी पार्टी की हो नीतियाँ हमेशा देश के 200 कारपोरेट घरानों के इशारे पर ही बनायी जाती हैं। मध्य प्रदेश में कांग्रेस और भाजपा के सत्ताधारी मुख्यमंत्रियों द्वारा किसानों के हितों की रक्षा के लिए लड़ाई लड़ने वाले जान लेवा हमले से बचे अगुवा डा0 सुनीलम तथा अन्य किसानों के खिलाफ फर्जी मुकदमें दर्ज कराए गये। इतिहास की शायद यह पहली घटना होगी जब डा0 सुनीलम की अगुवाई में अपने अस्तित्व को बचाने हेतु लड़ाई लड़ने वाले किसानों और सुनीलम को साथ साथ सजा सुनायी गई। भाजपा के मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान चाहते तो जैसे भाजपा कार्यकर्ताओं के मुकदमें वापस लिए वैसे ही इन किसानों तथा डा0 सुनीलम के भी मुकदमें वापस ले सकते थे। किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। मुकदमें वापस न लेने का मुख्य उद्देश्य यह था कि जमीन बचाने के लिए चल रहे संघर्षों तथा आन्दोलनों को कुचला जा सके ताकि कारपोरेट घरानों को आसानी से भूमि दी जा सके।

झारखण्ड के जनसंघर्षों की अगुवा दयामनी बारला को जेल में इसलिए डाल दिया गया क्योंकि उन पर आरोप था कि 9 अप्रैल 2006 को उनकी अगुवाई में हजारों आदिवासी अपने हक के खातिर राँची–पुरलिया रोड को जाम करके पुलिस के

खिलाफ गाली–गलौज करने के साथ ही प्रदर्शनकारी द्वारा ईंट–लाठी से हमला किया। किसानों तथा आदिवासियों की जमीन तथा जंगल छीनकर उन्हें विस्थापित कर देना कहाँ तक उचित है? जब ये किसान और आदिवासी अपने हक की लड़ाई लड़ने के लिए संघर्ष का रास्ता चुनते हैं तो उन्हें फर्जी मुकदमों में फँसाकर जेल में डाल दिया जाना अब सरकार के लिए आम बात हो गयी है। जमशेदपुर के तुरती गाँव में 304 एकड़ भूमि का अधिग्रहण यूरेनियम खनन के लिए किया गया है। चतरा जिला के टंडवा तथा हजारीबाग का केरेडारी क्षेत्र में प्रस्तावित औद्योगिकरण की वजह से अनुमानतः बीस हजार किसानों को अपनी जमीन से हाथ धोना पडेगा और वे विस्थापित भूमिहीन बनकर बंजारों का जीवन जीने को मजबूर हो जाएंगे। झारखण्ड में विभिन्न बड़ी कम्पनियों के पास अधिग्रहण की गई बीस हजार एकड़ जमीन है जिसका वे आज तक उपयोग नहीं कर पाए हैं। इसी प्रकार छत्तीसगढ़ के नये रायपुर में राजधानी बनाने के नाम पर एक लाख एकड़ भूमि सरकार और भू माफियाओं द्वारा कैड़ियों के भाव अधिग्रहीत की जा रही है। रंगाली बाँध के कारण 10616 परिवार विस्थापित हो गए और इस परियोजना हेतु 99479 एकड़ जमीन का अधिग्रहण किया गया है। ओड़िशा में लौह अयस्क खनन के लिए छः हजार एकड़ भूमि कम्पनियों को देकर एक लाख लोगों को विस्थापन का शिकार बनाया गया। पोस्को संघर्ष समिति के सदस्यों के विरूद्ध 1200 केस दर्ज किए गए हैं और पचास सदस्यों को जेल में डाल दिया गया है। इतना ही नहीं बल्कि 2006में विस्थापन विरोधी संघर्ष के दौरान चौदह आदिवासी पुलिस की गोली से मारे जा चुके हैं। कलिंगनगर और धानगोजी के बीच दस हजार एकड़ जमीन जोर–जबर्दस्ती के बल पर सैंतीस हजार रूपये प्रति एकड़ की दर से ली गयी किसानों की जमीनों को अब लौह कम्पनियां प्रन्द्रह से बीस लाख रूपये प्रति एकड़ के हिसाब से बेचकर मालामाल हो रही हैं। उत्तर प्रदेश, बिहार, पंश्चिमी बंगाल, हरियाणा, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश व अन्य प्रदेशों से अब तक विकास के नाम पर तथा पर्यटन की आड़ में अय्याशियों का अड्डा बनाने के लिए 81 लाख हेक्टयर जमीन हड़पकर 200 बड़े कारपोरेट घरानों को सौंपी जा चुकी है। जिसके चलते कई आदिवासियों का अस्तित्व ही संकट ग्रस्त हो गया है। इसके अलावा देश में लगभग 11 से 12 करोड़ लोगों के पास खुद का घर बनाने के लिए जमीन तक नहीं है। सरकारी, गैरसरकारी तथा पीपीपी परियोजनाओं के लिए रोज–रोज

जमीन अधिग्रहण करके भूमिहीनों की संख्या प्रतिदिन बढ़ाई जा रही है। जब करोड़ों किसान, आदिवासी व गरीब ग्रामीण अपनी भूमि बचाने के लिए लोकतांत्रिक तरीके से संघर्ष करता है तब उन्हें पुलिसिया दमन का शिकार बनना पड़ता है और बहुतेरों को तो पुलिस की गोलियों से उड़ा दिया जाता है। बाकी किसानों को फर्जी ढंग से मुकदमें में फंसाकर सजा दिलायी जाती है ताकि उनके मनोबल को तोड़कर अधिग्रहण की कार्यवाही आसानी से चलायी जा सके।

आने वाले दिनों में शहरों के विस्तार, माईनिंग परियोजनाओं, इस्पात, सीमेंट कारखानों, उर्जा संयत्रों, बांधों, गंगा व जमुना एक्सप्रेस–वे सरीखी बड़ी बड़ी सड़क परियोजनाओं, हवाई अड्डों, होटलों आदि तथाकथित विकास परियोजनाओं के लिए ज्यादा से ज्यादा जमीनों का अधिग्रहण अवश्यंभावी है। दूसरी तरफ जमींदारी उन्मूलन अधिनियम, सिलिंग एक्ट, सी. एन. टी. एक्ट, एस.पी.टी. एक्ट, संविधान के अनुच्छेद–5 में आदिवासियों को विशेष संरक्षण के प्रावधानों तथा अनुसूचित जातियों को भूमिहीनता से बचाने के लिए किए गये प्रावधानों, भूमि के मूल चरित्र के रूपान्तरण पर लगाये गये अवरोधों आदि जो अनुसूचित जातियों, आदिवासियों, भूमिहीनों, सीमांत किसानों के हितों का बचाव करते हैं।,उन नियमों तथा कानूनों को दरकिनार करके ठंडे बस्ते में डाल दिया गया है। इस लुटेरी प्रणाली के कारण सरकार तथा राजनेताओं की विश्वसनियता खतरे में पड़ गयी है। इसी प्रणाली के चलते हिंसा भी बढ़ रही है और जनता का का आक्रोश सातवें आसमान पर है। समय रहते भूमि अधिग्रहण, किसान तथा आदिवासियों का विस्थापन और इनके विरूद्ध की जा रही कार्यवाईयों को यदि रोका नहीं गया तो अन्य देशों की तरह यहां पर भी भयानक और खतरनाक विद्रोह की संभावनाओं को नकारा नहीं जा सकता है।

पॉपुलर एजूकेशन एण्ड एक्शन सेंटर (पीस) प्रतिबद्ध और अनुभवी लोगों का ऐसा समूह है जो स्थानीय एवं व्यापक स्तर पर सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को मज़बूत करने की दिशा में प्रयत्नशील है।

इस क्रम में जीवनयापन के लिए जूझ रहे व्यक्तियों एवं समुदायों और अपनी अस्मिता को बचाए रखने तथा जनतांत्रिक मूल्यों के लिए संघर्षरत जन समूहों की जानकारी एवं ज्ञान में बढ़ोत्तरी करना पीस का मुख्य सरोकार रहा है।

विगत कुछ वर्षों से पीस समान सोच वाले समूहों और जन संगठनों के बीच संवाद की प्रक्रिया चला कर व्यापक स्तर पर चलने वाले जन आंदोलनों और गठबंधनों की प्रक्रिया को भी मज़बूत करने हेतु प्रयत्नशील है।

मौजूदा पुस्तिका की तर्ज़ पर ही हमने पहले भी आम जन जीवन को प्रभावित करने वाले मुद्दों पर शिक्षणसामग्री का निर्माण व प्रकाशन किया है। इस क्रम में कुछ महत्वपूर्ण सामग्री है:

- ज्ञान की पूँजी पर पूँजी का शिकंजा
- पूँजी के निशाने पर पानी
- बाज़ारीकरण के दस साल
- The Noose is Tightening-AOA (July Framework)
- GATS (Primer)
- नकेल कसती जा रही है
- कहीं पर निगाहें, कहीं पर निशाना: वन अधिकार अधिनियम 2006
- उड़ीसा के जनसंघर्ष : सबक और चुनौतियाँ
- People's Struggles of Orissa : Lessons and Challenges
- परमाणु ऊर्जा : सस्ती साफ बिजली या महाविनाश को बुलावा
- कही पर निगाहें, कहीं पर निशाना – प्रस्तावित भूमि अधिनियम (संशोधन) बिल

पॉपुलर एजूकेशन एण्ड एक्शन सेंटर (पीस)
ए–124/6, कटवारिया सराय, नई दिल्ली–110016
फोन: 011–26968121/26858940